अष्ट प्रवचन

[दूसरा भाग]

☆

श्री तारणस्वामी विरचित
श्री 'उपदेश शुद्धसार' आदि ग्रंथों पर
पू. श्री कानजीस्वामीके
सम्यक्त्वप्रेरक आठ अमृत-प्रवचन

★

· लेखक :
ब्र. हरिलाल जैन
सोनगढ (सौराष्ट्र)

. अनुवादक :
श्री ताराचन्द समैया, ललितपुर

भारतीय श्रुति-दर्शन केन्द्र
जयपुर

अष्ट प्रवचन

[दूसरा भाग]

श्री तारणस्वामी विरचित
श्री 'उपदेश शुद्धसार' आदि ग्रंथों पर
पू. श्री कानजीस्वामीके
सम्यक्त्वप्रेरक आठ अमृत-प्रवचन

: लेखक :

ब्र. हरिलाल जैन
सोनगढ (सौराष्ट्र)

: अनुवादक :

श्री ताराचन्द समैया, ललितपुर

भारतीय श्रुत-दर्शन केन्द्र
जयपुर

: प्रकाशक :

समाजभूषण सेठ भगवानदास शोभालाल जैन
सागर (मध्यप्रदेश)

वीर सवत्	प्रथम सस्करण	ई सन्
२४९६	५०००	1970
श्रावण पूर्णिमा		अगस्त

卐

मूल्य : १-५०

: मुद्रक :

मगनलाल जैन
अजित मुद्रणालय
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

पू. गुरुदेव लिखते हैं—आत्मभावना
પરમ પારિણામિક ભાવ છું
કારણ પરમાત્મા છું
કારણ જીવ છું
શુધ્ધ ઉપયોગોહં
નિર્વિકલ્પોહં

प्रकाशकीय निवेदन

जयपुर

गुरु महाराज श्री तारणस्वामीने अपनी मंगल-वाणीसे भव्योको सम्बोधन करते हुए कहा है कि समस्त जनरजन एव मनरजनको छोडकर जिनरजन और आतमरजनके कार्यमे एकान्त-रूपसे मन लगे विना अपने शुद्ध आतमस्वरूपके लक्षकी प्राप्ति सर्वथा असम्भव है। अनादिकालसे यह आतमा अपने शुद्ध पारिणामिक परमभावको भूलकर पचपरावर्तनरूप ससारमे भ्रमण कर रहा है। अनन्तकालमें एक क्षण भी अपने आतमाके सुखका आस्वादन किये विना कृत्रिम, काल्पनिक, क्षणिक सुखकी आशामे दौड रहा है, इसे अपने लक्षका न तो ध्यान है और न उसे प्राप्त करनेकी विधि ही जानता है।

ससारके अनन्त प्राणियोकी भाँति भटकते भटकते महाभाग्यसे हमे यह मनुष्यभव एव जिनधर्मकी प्राप्ति हुई; परन्तु कुलपरम्परासे पूजा-पाठ और स्वाध्याय-भक्तिकी रागमय प्रवृत्तिमे ही हम धर्म मान रहे थे; वास्तवमें धर्म क्या है—इसका हमें बोध भी नही था परन्तु पुण्योदयसे एकवार हमारा सोनगढ जाना हुआ जहाँ पूज्य श्री कानजी स्वामी अपनी सातिशय दिव्य वाणीसे निरन्तर शाश्वत दिगम्बर जैनधर्मका यथार्थ उपदेश दे रहे हैं। उनकी वाणी द्वारा जब हमने सुना कि प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है, जड़-चेतन अपने-अपने स्वचतुष्टयमे रहकर उत्पाद-व्ययकी क्रिया विना किसी व्यवधानके कर रहे हैं, किसी द्रव्यको किसी अन्य द्रव्यके कार्यमे साधक या बाधक होनेका अवकाश ही नही है—तब हमें अपार शान्तिका अनुभव हुआ और ऐसा लगा कि

सचमुच पूज्य स्वामीजी हमारे महाराज श्री तारणस्वामीके हृदयमे बैठकर उनकी बात हमारे आत्महितके लिये समझा रहे हैं।

अपने परम्परागत सस्कारोके अनुसार जब हमने गुरु महाराज श्री तारणस्वामीके वचनो पर विचार एव मनन किया तब हमे ख्याल आया कि—उनके भावोको भूलकर हम सब अपना हित करनेके बदले अहित कर रहे हैं, एव अतरसे जिज्ञासा हुई कि यदि पूज्य स्वामीजी गुरु महाराज श्री तारण-स्वामीके ग्रन्थो पर प्रवचन करे तो उनकी सातिशय वाणीसे हमारे ग्रन्थोमे भरे हुए भावोका स्पष्टीकरण होगा तथा हम अपनी खोयी हुई निधिको पहिचान सकेंगे। अवसर पाकर हमने पू स्वामीजीके निकट अपनी हार्दिक भावना व्यक्त की। हमारे प्रति पूज्य स्वामीजीका पुत्रवत् वात्सल्य है और निरतर हमें सत्मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा दे रहे हैं.. ...उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करके "श्री ज्ञानसमुच्चयसार" आदि ग्रन्थो पर प्रवचन किये, उनमेंसे पहले आठ प्रवचन हम 'अष्ट प्रवचन' के नामसे प्रकाशित करवा चुके हैं और यह दूसरा भाग आपके हाथमे है। आशा है यह दूसरा भाग भी मुमुक्षुओको आत्महितमें सहायक होगा।

पूज्य स्वामीजीकी हमारे ऊपर इतनी महान कृपा है कि जब हमने सन् १९६५ फरवरीमे निसईजी क्षेत्र पर पधारनेकी प्रार्थना की तब पूज्य गुरुदेवने उसे स्वीकार कर लिया और सघ-सहित निसईजी पधारकर अपने शुभहस्तसे नवनिर्मित भव्य

समाजभूषण श्रीमत सेठ भगवानदासजी

समाजभूषण श्रीमत सेठ शोभालालजी

स्वाध्यायमन्दिरका उद्‌घाटन किया, एव तिलक-प्रतिष्ठा महोत्सवकी शोभा बढायी। इसी अवसर पर श्री प. बाबूभाई फतेपुर वाले भी हमारे निवेदन पर छह सौ यात्रियोके सघसहित निसईजी पधारे थे और वीतराग धर्म एव जिनशासनकी अपूर्व प्रभावना हुई थी।

ब्रह्मचारी श्री हरिलाल जैनके हम बहुत आभारी हैं जिनके परिश्रमसे यह पुस्तक हम आपके हाथमे दे सके हैं। अजित मुद्रणालयके मालिक श्री मगनलाल जैनका भी हम आभार मानते हैं जिन्होने इस पुस्तककी छपाईका कार्य अल्प समयमे सुन्दर ढगसे कर दिया है। साथ ही हम भाई ताराचन्दजी समैया ललितपुर वालोको भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने श्री ब्रह्मचारी हरिलालजी द्वारा लिखे गये गुजराती प्रवचनोका हिन्दी अनुवाद बडे परिश्रमपूर्वक सरल एव सुन्दर भाषामे कर दिया है। अन्य सब सहयोगियोका भी हम आभार मानते है। अन्तमे हम भावना भाते हैं कि—आत्मस्वभावसे अभिन्न एव समस्त परभावोसे भिन्न एक, पूर्ण, अनादि-अनत, मुक्त, समस्त सकल्प-विकल्पजाल जिसमे अवगाहन करनेसे विलीन हो जाते हैं—ऐसा प्रकाशमान शुद्ध निश्चयनयका विषयभूत पदार्थ हम सबके हृदयमे उदयमान हो।

सोनगढ
श्रावण पूर्णिमा
वीर सवत् २४९६

विनीत—
भगवानदास शोभालाल
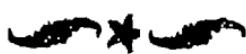
भूमिका

वीर स २४८८ में दसलक्षण पर्यूषण पर्वके समय सागर निवासी समाजभूषण सेठश्री भगवानदासजी, सेठश्री शोभालालजी, टिमरनी निवासी शेठश्री चुन्नीलालजी, प श्री जयकुमारजी आदि महानुभाव सोनगढ आये थे, उस समय समयसारकी ४७ शक्तिके ऊपर एव प्रवचनसारके ऊपर पू श्री कानजी स्वामीके अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचन सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए, और उनको श्री तारणस्वामी रचित शास्त्रोका मार्मिक अर्थ पू श्री कानजी स्वामीके श्रीमुखसे सुननेकी जिज्ञासा हुई। उनकी विनतीके अनुसार श्री तारणस्वामी विरचित श्री ज्ञानसमुच्चयसार आदि ग्रथोके सारभागके ऊपर श्री कानजी स्वामीने अध्यात्मभावनासे भरपूर विवेचन किया। यह आध्यात्मिक विवेचन सुनकर सेठ श्री भगवानदासजी, शोभालालजी आदिको बहुत प्रसन्नता हुई और आठो प्रवचन छपवानेकी उनकी भावना हुई। तदनुसार उन्ही प्रवचनोका एक सग्रह 'अष्ट प्रवचन' (प्रथमभाग) के रूपमे (हिन्दी-गुजराती दोनो भाषाओमे, छह वर्ष पहले) प्रकाशित हो चुका है, जोकि जिज्ञासुओको सम्यक्त्वकी उत्तम प्रेरणा देनेवाला है।

वीर स २४८८ के बाद भी प्रतिवर्ष सेठश्री सोनगढ आते रहते हैं, और उत्साहसे स्वामीजीके प्रवचनोका लाभ लेते हैं। आपने करीब दो लाख रुपयोकी लागतसे सोनगढमे विशाल
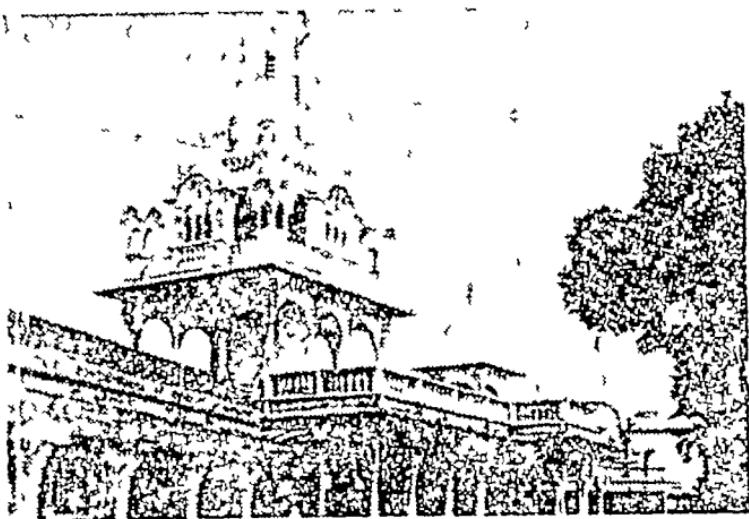
श्री निसईजी क्षेत्रके अन्दरका
भव्य गगनचुम्बी शिखर

श्री निसईजी क्षेत्र (मल्हारगढ़) में पूज्य श्री कानजी स्वामीके साथ समाजभूषण सेठ श्री भगवानदासजी तथा सेठ श्री शोभालालजी

卐 卐
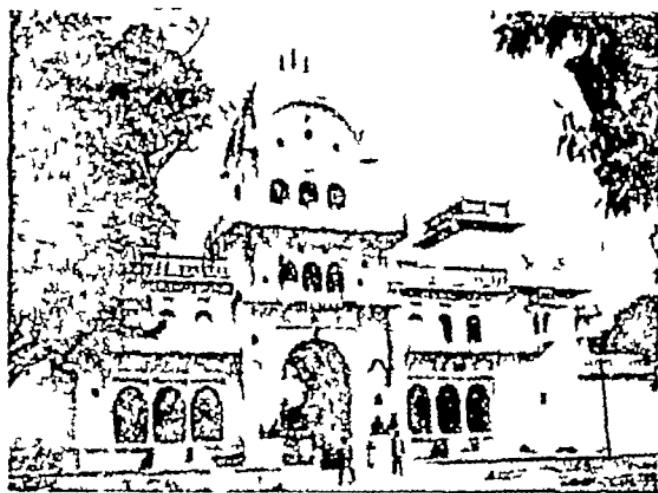
श्री निसईजी क्षेत्रका विशाल भव्य प्रवेश द्वार

卐 卐

श्री निसईजी क्षेत्र (मल्हारगढ़) के नवनिर्मित स्वाध्याय-भवनमें पूज्य श्री कानजी स्वामीकी दायीं ओर श्री क्षुल्लक पूर्णसागरजी तथा बायीं ओर तारण समाजके प्रसिद्ध विद्वान ब्र गुलाबचंदजी बैठे हैं। श्री सेठ भगवानदासजी तथा उनके भ्रातृज श्री माणिकचन्दजी आदि भी दिखायी दे रहे हैं।

मकान बनाया है,-जिसका वातावरण तत्त्वचर्चा आदिसे एक आध्यात्मिक आश्रम जैसा बना रहता है। दूसरी साल (वीर स. २४८९ में) सेठजीको फिरसे श्री तारणस्वामीके ग्रंथोंके ऊपर विवेचन सुननेकी उत्कठा हुई, और तदनुसार पू. श्री कानजी-स्वामीने दूसरीबार भी अष्ट प्रवचन किये, अबकी बार श्री तारणस्वामी रचित 'उपदेश-शुद्धसार'के मोक्षमार्ग नामक अधिकार पर प्रवचन किये; उसमे यह समझाया है कि सच्चा जिनोपदेश कैसा होता है? उसका सार क्या है? और जिनोपदेशमें मोक्ष-मार्ग कैसा दिखाया है? उस मोक्षमार्गका मूल सम्यग्दर्शन है, उसका स्वरूप भी खूब समझाया है-जो कि प्रत्येक मुमुक्षुके लिये अत्यंत उपयोगी है। दूसरी बारके यह अष्ट प्रवचन इस पुस्तकमें प्रकाशित हो रहे हैं। अष्ट प्रवचनोके उपरान्त दो परिशिष्ट दिये हैं; प्रथम परिशिष्टमें समयसार गा १४४ का प्रवचन है-जिसमे सम्यक्त्व प्राप्त करनेकी रीति अनोखे ढगसे समझायी है; और दूसरे परिशिष्टमे, सेठश्रीके नये भवनका सोनगढमें जब उद्घाटन हुआ उस समय भवनमें ही दिया गया स्वामीजीका प्रवचन है,-जिसमें सम्यग्दृष्टि-धर्मात्माकी दिव्यदृष्टिका रहस्य खोला है। इस तरहसे यह दूसरे 'अष्ट प्रवचन' भी जिज्ञासु-जीवोको बहुत उपयोगी हैं और सच्चे मोक्षमार्गका स्वरूप दिखलाकर सम्यदर्शनकी प्रेरणा देने वाले हैं।

इसके उपरान्त फिर तीसरीबार भी स्वामीजोके अष्ट प्रवचन हो चुके हैं- जो कि यथासमय प्रकाशित होगे।

श्री ज्ञानसमुच्चयसार, उपदेश-शुद्धसार श्री ममलपाहुड एवं श्री श्रावकाचार आदि ग्रन्थोंके रचयिता श्री तारणस्वामी विक्रम संवत्‌की १६ वीं शताब्दिमें मध्यप्रान्तमें हुये। मध्यप्रान्तमें अनेकों जिज्ञासु आपकी अध्यात्मशैलीसे प्रभावित हैं। अपके द्वारा रचे गये ग्रन्थोंमें बारबार श्री कुन्दकुन्दस्वामी, अमृतचन्द्रस्वामी, समन्तभद्र स्वामी आदि आचार्योंके समयसार-प्रवचनसार-स्वयंभूस्तोत्र आदि शास्त्रोंका प्रभाव दिख रहा है। आपकी प्रतिपादनशैली अध्यात्म-रससे भरपूर है, इससे आपके ग्रंथोंके ऊपर दिये गये यह प्रवचन भी अध्यात्मरसिक जनोंको अवश्य रुचिकर होंगे। अध्यात्म-प्रेमी सेठश्री भगवानदासजी शोभालालजीने इन प्रवचनोंके प्रकाशन द्वारा अपनी अध्यात्मप्रचारकी जो भावना व्यक्त की है और स्वय भी अध्यात्मका जो लाभ ले रहे हैं वह प्रशसनीय है। हमारे साधर्मी बन्धु भी इस 'अष्ट प्रवचन'के द्वारा अध्यात्मरसका पान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करें और मोक्षमार्गके पथिक बनें—यही मगल-कामना है।

श्रावण पूर्णिमा
वीर स २४९६
सोनगढ

—ब्र. हरिलाल जैन

—:शुद्धिपत्र:—

पृष्ठ नं.	पंक्ति नं.	अशुद्ध	शुद्ध
९ (भूमिका)	४	अपके	आपके
११	१४	काचली	काचबो
१४	८	काचली	मछली
१४	११	काचली	काचबी
२४	१७	हाता है	होता है
४३		का	को
७०	९	माग	मार्ग
१०३	६	निश्चनय	निश्चयनय
१२५	५	ही	×
१२९	१३	रूपा	रूपी
१३६	१५	सौर	और
१४३	१९	ह	है
१४४	५	उसका	उसको
१५३	२१	शद्ध	शुद्ध
१५९	१३	झुकोनका	झुकानेका
१६१	२१	हो	धनी हो
१६५	१२	भावश्रत	भावश्रुत
१६७	१७	सकता	कर सकता
१७४	७	मिथ्यावादि	मिथ्यात्वादि
१७४	२०	होती	नहीं होती
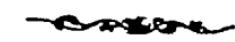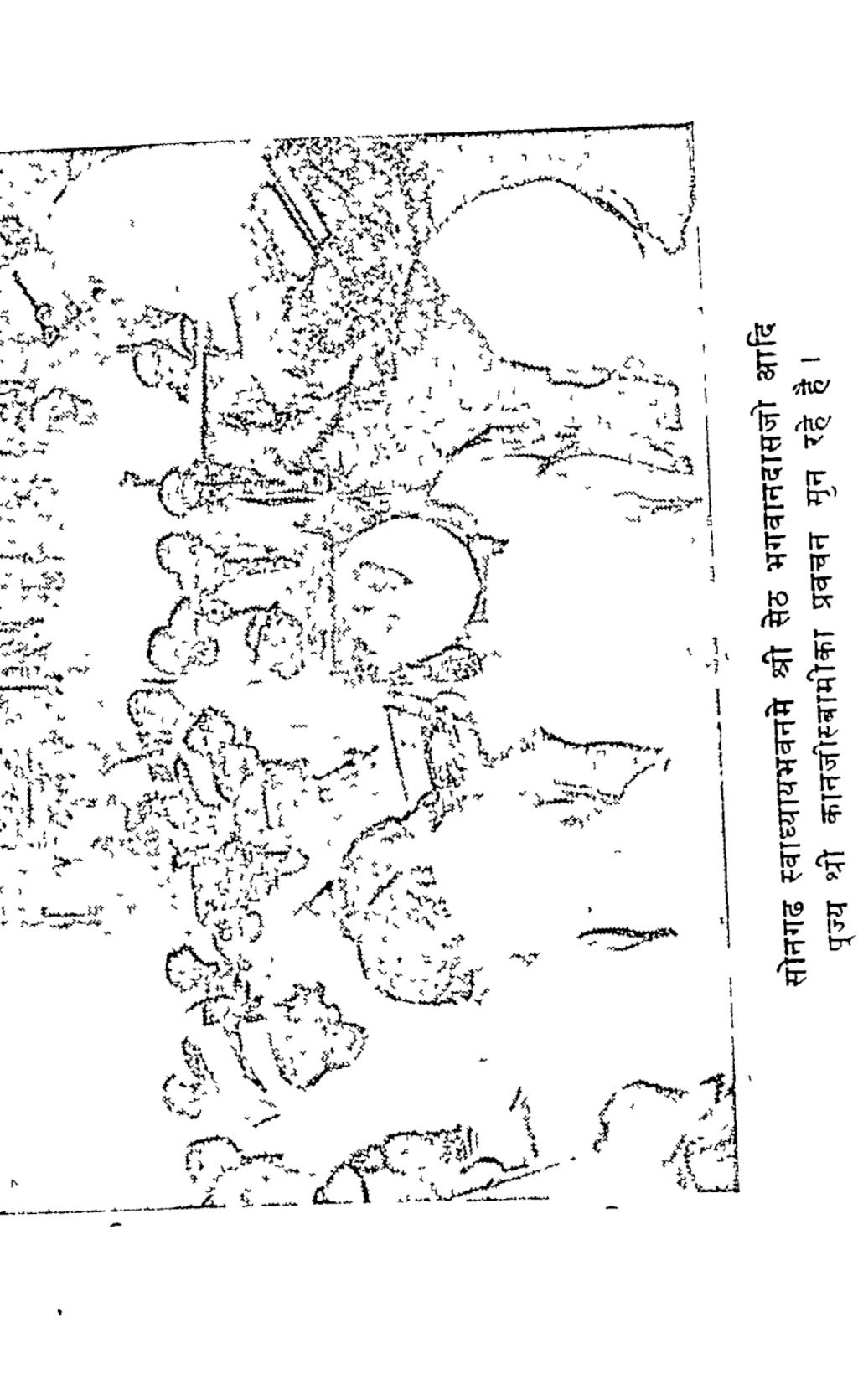
सोनगढ स्वाध्यायभवनमे श्री सेठ भगवानदासजो आदि पूज्य श्री कानजीस्वामीका प्रवचन सुन रहे है।

[१]

卐 नववाँ प्रवचन 卐

[वीर सं. २४८९ भाद्रपद कृष्णा १०]

नावकी तरह आत्मा स्वयं अपनेको तारनेवाला है

सर्वज्ञ भगवानके उपदेशमें मोक्षमार्ग कहा गया है, उन सर्वज्ञ भगवानके उपदेशका सार क्या है कि–जिससे मोक्ष-मार्ग प्रगट होता है ? यह बात श्री तारण स्वामीने 'उपदेश शुद्धसार' में कही है। उसमें ४९२ वीं गाथामें कहा है कि निर्मल स्वरूपी आत्मा स्वयं अपनेको तारनेवाला है।

अप्पं च अप्प तारं नाव विसेसं च पारं गच्छंति।
अप्पं विमल सरूवं कम्मं खिपिऊन तिविह जोएन ॥ ४९२ ॥

निर्मल स्वरूपी आत्मा स्वयं अपनेको तारता है। भेदज्ञान-रूप विशेष नौकासे आत्मा स्वयं ही संसारसमुद्रसे पार होता है। जिस प्रकार नौका अपने स्वभावसे ही तैरनेवाली है उसी-प्रकार निर्मल स्वरूपी आत्मा अपने स्वभावसे ही कर्मोंका क्षय करके भव समुद्रको पार करता है, इसप्रकार आत्मा स्वयं ही स्वयंको तारनेवाला है—ऐसा भगवानका उपदेश है, ऐसा

उपदेश ही शुद्ध उपदेश है। 'अप्पं च अप्प तार।' कोई दूसरा आत्माको डुबाये अथवा कोई दूसरा आत्माको तारे ऐसा उपदेश शुद्ध नहीं है, अर्थात् वह भगवानका कहा हुआ उपदेश नहीं है। शुद्ध उपदेश तो वही कहा जायगा जिसमें आत्मा स्वयं अपनेको विमल स्वभावके आश्रयसे तारता है ऐसा बताया गया है। परके अवलंबनसे या रागके अवलंबनसे तारनेको कोई कहे तो वह भगवानका उपदेश नहीं, वह शुद्ध उपदेश नहीं परन्तु अशुद्ध उपदेश है अर्थात् मिथ्या उपदेश है। भगवानने तो विमल स्वभावके आश्रयसे ही भवसे पार होनेका कहा है।

✻ शुद्ध उपयोग ही मोक्ष जानेका जहाज है ✻

आत्मा शुद्ध उपयोगस्वरूप है वह स्वयं जहाजके समान है, जिसप्रकार जहाज स्वयं ही तैरकर समुद्रको पार करता है उसीप्रकार शुद्धोपयोगी आत्मा स्वयंके कर्मक्षय करके संसारसे पार होता है, शुद्ध उपयोग ही कर्मक्षयका कारण है और वही भवसमुद्रसे तरनेकी नौका है।

आत्मा एक शुद्धोपयोगभावधारी है। यही एक भाव जहाजके समान है। जैसे जहाज आप ही चलकर समुद्रपार हो जाता है वैसे ही शुद्धोपयोगभावधारी आत्मा आप ही संसारसे पार होता है। यही एक भाव कर्मक्षयकारक है। इसप्रकार शुद्धोपयोग ही मोक्ष जानेकी नौका है।

* शुद्धस्वभावको साधे वही साधु अर्थात् साधक *

प्रत्येक आत्मद्रव्यमें अनन्तगुण हैं, उसकी जानकारीके बिना सच्चा ध्यान या साधुपना नहीं होता, 'साधु' अर्थात् शुद्धआत्माका साधक, उसमें सम्यग्दृष्टि भी आजाता है, वह अनन्तगुणरूप अपने आत्मद्रव्यको साधकर उसमें लीन होता है। 'लीन अनन्त नन्तं. . ' (उपदेश शुद्धसार गा० ५५) आत्मामें कालसे अनन्त, संख्यासे अनन्त और सामर्थ्यसे भी अनन्तगुण हैं (क्षेत्रसे अनन्त नहीं) ऐसे आत्माको धर्मी साधता है। साधु आत्माकी अनन्तानन्त शक्तियोंके पहिचानने वाले होते हैं। आत्मा अपने अनन्त गुण-पर्यायोंका समुदाय है, उसी आत्माके स्वभावमें तन्मय हो जाते हैं। जीव ज्यों ही निश्चयनय द्वारा इसप्रकार अपने आत्माको देखता है त्यों ही समताभाव जाग्रत होता है और राग-द्वेष छूट जाता है, आत्मज्ञानके साथ वीतरागभाव आया वही सच्चा सहकार है, उसमें ही निश्चय महाव्रत आ जाता है, रागादि-भाव हिंसा है और वीतरागीभाव परमार्थ अहिंसारूप निश्चय महाव्रत है, वही सत्य स्वरूप है, उसमें पर भावोंका ग्रहण न होनेसे वह अदत्त है, ब्रह्मस्वरूपमें आचरणरूप वह ब्रह्मचर्य है, और उसमें अपने स्वरूपके अतिरिक्त दूसरेका कोई ममत्व न होनेसे वही अपरिग्रह है, इसप्रकार वीतराग-भावमें पांचों निश्चय महाव्रत समा जाते हैं, और उसके अवलंबनसे जीव संसारसे तर जाता है।

* तरनेका मार्ग *

देखो, यह भगवानका उपदेश! वीतरागभाव ही भगवानके उपदेशका शुद्धसार है, जो जीव ऐसा उपदेश ग्रहण करके तरता है वह अत्यन्त आदर और विनयसे कहता है कि अहो! ऐसा शुद्ध उपदेश देनेवाले देव-गुरु ही तरणतारण हैं। अपने स्वतत्त्वको अनन्तगुणस्वरूप जानकर उसमें लीन होना मोक्षमार्ग है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने आत्माके आश्रयसे होते हैं और उससे ही आत्मा अपने आपको तारता है; जिसप्रकार नौकाका स्वय तैरना स्वभाव है वैसे ही निर्विकल्प चिदानंद प्रभु आत्मा स्वयं तरनेके स्वभाव वाला है, रत्नत्रयसे वह स्वयं अपनेको तारता है।

आत्माका सम्यग्दर्शन तरनेके स्वभाववाला है
वह अपने आत्माके आश्रयसे स्वयं ही होता है,
आत्माका सम्यग्ज्ञान तरनेके स्वभाववाला है
वह अपने आत्माके आश्रयसे स्वयं ही होता है,
आत्माका सम्यक् चारित्र तरनेके स्वभाव वाला है
वह अपने आत्माके आश्रयसे स्वयं अपनेको तारता है।

ऐसे स्व-आश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे आत्मा स्वयं ही अपनेको तारता है—अप्पं च अप्प तारं—जिसने ऐसा मार्ग जान लिया उसने तरनेका मार्ग जान लिया, उसने

भगवानके उपदेशका शुद्धसार जाना—वह स्वंय ही अपना 'तारणहार' हुआ।

तरनेका उपाय बतानेवाले देव-गुरु-शास्त्र

इस प्रकार, आत्मा स्वयं विमल स्वरूप है, उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप विमल परिणाम ही मुक्तिका कारण है, दूसरा कोई मुक्तिका कारण नहीं। ऐसा मोक्षमार्ग भगवानने कहा है और ऐसा कहनेवाले देव-गुरु-धर्म ही पूज्य हैं। पृष्ठ ५६ गाथा ७४में कहते हैं कि सब देवोंमें उत्तम (अर्थात् सच्चे) श्री अरिहंत देव ही हैं, गुरुओंमें सच्ची दृष्टिवाले निर्ग्रंथ साधु ही परमगुरु हैं, धर्मोंमें सर्वज्ञ वीतराग देव द्वारा कहा परम वीतरागभावरूप धर्म ही धर्म है, विजेताओंमें उत्तम जिन परम शुद्ध ऐसे अर्हन्त और सिद्ध परमात्मा हैं। मोक्षार्थी जीवोंको ऐसे उत्तम देव-गुरु-धर्म ही पूजनीय हैं। भेदज्ञान पूर्वक ही इनकी सच्ची पहिचान होती है, और तभी शुद्ध सम्यक्त्व अर्थात निश्चय सम्यक्त्व होता है। निश्चय सम्यग्दर्शनको ही शुद्ध सम्यक्त्वकी तरह वर्णन किया है, वह चौथे गुणस्थानसे होता है।

* शुद्ध सम्यक्त्वका उपदेश *

शुद्ध सम्यक्त्वका कथन करते हुए गाथा ७८में श्री तारण-स्वामी कहते हैं कि—

सम्मत्त सुद्धं सुद्धं, सुद्धं दरसेइ विमल रूवेन।

आत्मा राग-द्वेषरूप भावकर्मोंसे भिन्न, द्रव्यकर्मोंसे भिन्न और शरीरादि नोकर्मोंसे भी भिन्न है। आत्माका ऐसा शुद्धस्वरूप देखना, अनुभव करना इसको ही भगवानने शुद्ध सम्यक्त्व कहा है और वह मोक्षका मार्ग है। बीचमें राग आवे तो बंधका मार्ग है, मोक्षका मार्ग नहीं। अपने शुद्ध-स्वभावका भान होनेसे शरीरमद आदिका त्याग हो जाता है, क्योंकि जब देह ही मैं नहीं तब मद किसका? इस प्रकार शुद्ध आत्माको श्रद्धामें लाना परमशुद्ध सम्यक्त्व है वही निर्विकल्प सम्यग्दर्शन अथवा निश्चय सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शनका उपदेश ही शुद्ध उपदेश है। वही सार है और वही भव्य जीवोंके लिये 'इष्ट उपदेश' है, इससे विरुद्ध (पराश्रयसे-रागसे लाभ माननेवाला) उपदेश इष्ट नहीं, सार नहीं, शुद्ध नहीं, परन्तु वह तो अनिष्ट, असार, अशुद्ध और जीवका अहित करने वाला है।

* भगवान शुद्ध द्वारा कहा गया उपदेश *

श्रीपूज्यपाद स्वामीने 'इष्टोपदेश' में जीवके हितका उपदेश देते हुये कहा है कि—सभी निमित्त धर्मास्तिकायवत् हैं अर्थात् अकिंचित्कर हैं- 'गतेः धर्मास्तिकायवत्।' कोई दूसरेको ज्ञानी अथवा अज्ञानी नहीं कर सकता, आत्मा स्वयं ही ज्ञान अथवा अज्ञान करता है, स्व-आश्रयका ऐसा

इष्ट (हितकर) उपदेश समझे तब ही देव-गुरुकी सच्ची पहिचान होती है। वीतरागी देव-गुरुने क्या कहा इसकी पहिचानके बिना देव-गुरुकी शुद्ध श्रद्धा कैसे रहे? और ऐसी श्रद्धा-प्रीतिके विना केवल शुभरागकी क्रियाओंसे जीवको धर्मका कोई लाभ नहीं होता। शुभ भाव हों परन्तु वे कोई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके कारण नहीं, भगवानके उपदेशका सार नहीं, वह इष्ट नहीं। 'उपदेशका शुद्धसार' कहो या 'इष्ट उपदेश' कहो उसमें तो आत्माके शुद्धस्वरूपका अनुभव करनेको ही कहा है, राग-द्वेषके क्षय करनेका उपदेश है किन्तु उसको रखनेका उपदेश नहीं। ऐसा उपदेश वही शुद्ध उपदेश है। पुण्यसे मोक्ष होना माने तो वह उपदेश भगवानका नहीं, शुद्ध नहीं, सच्चा नहीं, किन्तु मिथ्या-अज्ञानीका उपदेश है। ऐसा भगवानका यथार्थ उपदेश समझकर उसका प्रचार करने योग्य है। तारण समाजमें भी ऐसे उपदेशका प्रचार होना चाहिये। श्री तारणस्वामीने भी पृष्ठ ५८ गाथा ७७ में पुण्य और पाप दोनोंको क्षय करने योग्य कहा है।

खिपिओ मिथ्याभावं पुन्नं पावं च विषय संखिपनं।

सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वभावको तो क्षय करता है, पुण्य-पाप और इन्द्रिय-विषयोंके रागको भी क्षय करने योग्य जानता है, तीनों प्रकारके कुज्ञानों (कुमति-कुश्रुत-विभंगज्ञान)को भी क्षय करता है, उसको संशयादि तीन

द्वेष नहीं, वह संसारमें पड़नेके कारणरूप मोहांधभावको भी क्षय करता है— ऐसी दशा हो जाय तभी जीव धर्मी हुआ कहायेगा और वह भगवानके शुद्ध उपदेशको समझा कहावेगा।

भावार्थमें लिखते हैं कि— सम्यग्दृष्टि जीवके मिथ्यात्व-भाव नहीं रहा। न उसके कुदेवादिकी श्रद्धारूप गृहीत मिथ्यात्व है और न पर पर्यायमें रतिरूप अगृहीत मिथ्यात्व है। उसके भीतर शुद्ध भावोंकी रुचि हो गई है इसलिये वह पुण्य-पाप दोनोंसे उदासीन है। वही सच्चा वैरागी है, जो रागको उपादेय समझे उसको सच्चा वैराग्य नहीं होता, रागका विषय पर है, रागका विषय स्व नहीं, स्वके आश्रयसे रागकी उत्पत्ति नहीं होती इसलिये वह पर पर्याय है, उसकी रुचि धर्मीको नहीं, स्वके अनुभवमें राग रहता नहीं, ऐसा अनुभवका उपदेश सर्वज्ञ भगवानने दिया है। अतः श्रद्धालु मुमुक्षुओंको सर्वज्ञ अरिहन्त परमात्माको ही सच्चा आप्त-देव मानना चाहिये और उनके उपदेशानुसार श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करना योग्य है।

❀ भगवान, उनकी वाणी और उसका सार, उससे सम्यक्त्वकी प्राप्ति ❀

गाथा ११ पृष्ठ १२ में कहते हैं कि— अनन्त चतुष्टय धारक अरिहन्त देवकी महिमा अपार है, वे अनन्तानन्त पदार्थोंका परम गंभीर उपदेश देते हैं और निर्मल अक्षयदृष्टि

प्राप्त कराते हैं। भगवानने केवलज्ञानसे जो जाना उसका अनंतवां भाग ही वाणीमें आता है तो भी उस वाणीमें अनंतानंत पदार्थोंके स्वरूपका उपदेश आया है, परन्तु उसका सार क्या? कि शुद्धात्माका अनुभव करना ही भगवानके सर्व उपदेशका सार है, और उससे ही शुद्धदृष्टि (सम्यग्दर्शन) होता है। ऐसा शुद्ध उपदेश अर्हन्तदेवके शासनके अतिरिक्त अन्यमें होता नहीं है। भगवानने अनंतानंत पदार्थोंको जानकर कहा है, उसको जो न माने और सर्वथा अद्वैत (एक) माने तो उसके मतमें सच्चा उपदेश नहीं हो सकता। अपने अपने द्रव्य-गुण-पर्यायसे परिपूर्ण अनन्त पदार्थोंको भगवानने बताया है। जगतमें अनन्त पदार्थ, प्रत्येक पदार्थमें अनन्त पर्यायें हैं, जिनोपदेशका ऐसा गंभीर अर्थ जो स्वीकार न करे उसको सच्ची श्रद्धा अथवा सच्चा ज्ञान नहीं होता। भगवानके उपदेशके साथ अज्ञानियोंके उपदेशका मेल नहीं मिलता, अज्ञानमें कुछ न कुछ विपरीतता होती है। भगवान जिनेन्द्रदेव और उनकी परंपरामें हुये श्री कुन्दकुन्दाचार्य, श्री समन्तभद्राचार्य आदि जैन सन्तोंके अतिरिक्त दूसरोंके मार्गमें शुद्ध वस्तुका उपदेश नहीं। श्री तारणस्वामी तो जैन-परमेश्वरके परम भक्त थे और जैन परमेश्वरका यथार्थ उपदेश था उसके अनुसार ही उन्होंने उपदेश दिया है, उनकी तुलना जो अन्य मतावलम्बियोंके साथ करते हैं उनको जैन तत्त्वका ज्ञान नहीं। जिनके मतमें अनंतानंत द्रव्य-गुण-पर्यायोंकी मान्यता नहीं उनका उपदेश मिथ्या है। अहा! अनन्तानन्त

द्रव्य-गुण-पर्यायके जाननेवाले सर्वज्ञ भगवानके उपदेशको पाकर तो जीव क्षायिक सम्यक्त्व पाते हैं। जिनेन्द्र भगवानका उपदेश निश्चय सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कराता है। भगवानने जैसा कहा है वैसे शुद्ध स्वभावको दृष्टिमें रखनेसे अवश्य सम्यग्दर्शन होगा, उसके पश्चात् क्षायिकदृष्टि होकर केवलज्ञान होगा। ऐसा शुद्ध उपदेश महान भाग्यसे जीवको सुननेको मिलता है।

सच्चे देव कैसा उपदेश देते हैं? कहते हैं कि वे ज्ञान-स्वभावका ही उपदेश देते हैं। भगवानके गंभीर उपदेशमें अनंतानंत पदार्थोंके स्वरूप बताये हैं किन्तु उनमें उपादेय-भूत तो ज्ञानस्वभाव ही कहा है। सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञान निजस्वभावमें आया, वह ज्ञान ज्ञानस्वभावके आश्रयसे स्वयमेव वृद्धिगत होता होता केवलज्ञान होजाता है। मछलीके अंडेका दृष्टांत देते हुये कहते हैं कि-जैसे रेतीमें रखा गया मछलीका अंडा स्वयं बढ़ता है उसीप्रकार स्वभावकी ओर झुका हुआ ज्ञान स्वयं बढ़ते बढ़ते केवलज्ञान होजाता है, ऐसा ज्ञान आनन्दकारी है, मुक्तिका सहकारी है और उसका उपदेश भगवानने दिया है।

श्री अरहन्त भगवानके धर्मोपदेश द्वारा भव्यजीवोंको आत्मा-अनात्माका भेदविज्ञान पैदा होता है जिसके प्रतापसे आत्माका अनुभव ऐसा यथार्थ झलक जाता है कि जो अंकुर-का काम करता है। उक्त आत्मज्ञानके प्रभावसे ही ज्ञान

बढ़ता जाता है, जैसे- दोइजका चन्द्रमा नित्य बढ़ते बढ़ते पूर्णमासीका चन्द्रमा होजाता है, वैसे यही ज्ञान केवलज्ञान-मय होजाता है। (गाथा १०-११-१२ उपदेश शुद्धसार) यहां मछली के अंडेका जो दृष्टान्त दिया है वह दृष्टांत उन्होंने श्रावकाचारकी ४०१वीं गाथामें भी दिया है। सम्यग्दृष्टिका ज्ञान ज्ञानके वेदनसे स्वयं बढ़ता जाता है। परम आनंदसे परिपूर्ण सर्वज्ञस्वभाव अन्दर है उसका उपदेश भगवान देते हैं। उस स्वभावके लक्षसे एकाग्र होते होते केवलज्ञान होता है। ज्ञानकी वृद्धि इन्द्रियोंसे अथवा रागसे नहीं होती किन्तु स्वभावके सम्यग्ज्ञानसे ही ज्ञानकी शुद्धि-वृद्धि होती है, ज्ञानस्वभावके आश्रयसे ज्ञान स्वयमेव बढ़ता है और केवलज्ञान होता है। इसका नाम मोक्षका मार्ग! और यही वीतराग भगवानका उपदेश!

❀ काचलीके दृष्टांतसे धर्मात्माकी दृष्टिको समझाया ❀

श्रावकाचारकी गाथा ४०० में मछलीका दृष्टांत देकर कहते हैं कि जैसे मछली दृष्टिसे ही अन्डेको सेती है, उसकी दृष्टि अन्डेके ऊपर रहती है, निरंतर उसका ध्यान रहता है और इसप्रकार अन्डा बढ़ता है, उसीप्रकार धर्मात्माने पांच इन्द्रियोंकी ओरसे उपयोग हटा लिया है और अन्तरमें शुद्ध बोधबीज स्वभावके ऊपर सम्यग्दर्शनरूपी दृष्टिको एकाग्र किया है, दृष्टिका केन्द्र शुद्धात्माको बनाया है, ऐसी

शुद्धदृष्टिके बलसे उसका ज्ञान वृद्धिगत होता जाता है। इसके पूर्व ३१९वीं गाथामें भी कहा है कि अनेक प्रकारके पाठ पठन, अनेक प्रकारकी दानादि क्रियायें, उनसे दर्शनशुद्धि नहीं होती और दर्शनशुद्धिके विना समस्त क्रियायें व्यर्थ हैं। विशेषार्थमें लिखा है कि—'मोक्षमार्ग तो निश्चयसे एक अभेद शुद्धात्माके अनुभवस्वरूप है, यही परमानन्दका कारण है। जब तक सम्यक्त्वीका उपयोग आत्माके ध्यानमें लगता है तबतक वह आत्माका ध्यान ही करता रहता है। जब उपयोगमें निर्बलता हो जाती है तब विषय-कषायोंसे बचनेके लिये पूजा-दान-व्रतादि करता है, तथापि उसको बन्धका कारण जानता है, निश्चय मोक्षमार्ग नहीं मानता है।' शुद्ध आत्माके ऊपर दृष्टि होते हुये भी धर्मीके लिये भगवानकी पूजा-भक्ति आदिका शुभभाव आता है, परन्तु उसको वह मोक्षमार्ग नहीं मानता, पुण्यबन्धका कारण जानता है। शुद्धात्माके अनुभवके प्रतापसे उसका ज्ञान बढ़ता जाता है—बाहरी जानकारी बढ़नेकी यह बात नहीं किन्तु अन्तरमें स्वभावको पकड़नेकी ज्ञानशक्ति बढ़ती जाती है। शास्त्रादिकी जानकारी व्यवहारज्ञान है, अपने स्वभावकी जानकारी परमार्थ-ज्ञान है और उस स्वभावके अवलम्बनसे ही केवलज्ञान होता है।

देखो, 'श्रावकाचार' में श्रावकके लिये ऐसा ही उपदेश दिया है कि हे श्रावक! तेरा ज्ञान तो अन्दरसे बढ़ता है बाहरसे नहीं आता, दृष्टिके प्रभावसे ज्ञानकी वृद्धि होती है।

जिसप्रकार मछलीकी दृष्टि अंडेके ऊपर है उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि-का लक्ष ज्ञानस्वभावके ऊपर है; जिनके आत्मामें सम्यग्दर्शन विद्यमान है वे सम्यग्दृष्टिरूपी चक्षु द्वारा श्रुतज्ञानरूप अंडे-को पोषकर स्वयं केवलज्ञान प्रगट करते हैं, देखो सम्यग्दृष्टि साधुको शास्त्र पढ़े विना अंतरसे ज्ञानस्वभावके अवलंबनके कारण बारह अंगका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, पुस्तकोंके पढ़नेसे बारह अङ्गका ज्ञान नहीं खिलता। पक्षी तो पंखोंकी उष्णतासे अंडा पोषते हैं, पर मछली बिना पंख केवल दृष्टिसे अन्डा पोषती है। उसी प्रकार सम्यदृष्टि जीव पंखोंसे पोषे विना अर्थात् पढ़े विना दृष्टिसे ही अपने ज्ञानवीजको पोषते हैं। शुद्धात्मामें दृष्टिसे भावश्रुत बढ़ता जाता है। बारह अङ्गका ज्ञान बाहरसे पढ़ाया नहीं जाता किन्तु वह तो अन्तरमें ही खिलता है और वह भी जिसकी दृष्टि शुद्धात्माके ऊपर होती है उसको ही खिलता है। मिथ्या-दृष्टिको बारह अङ्गका ज्ञान कभी नहीं खिलता। भले ही भक्ति-स्वाध्यायका शुभभाव हो पर उसका मूल्य क्या? यही कि पुण्यबंध हो जायगा, किन्तु उससे मोक्षमार्ग नहीं मिलेगा। मोक्षमार्गरूप धर्म तो आत्माके निर्विकल्प सम्यग-दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागपरिणाम हैं। श्री तारणस्वामीने भी इसी बात पर ही जोर दिया है। लोग अपनी कल्पनासे दूसरा मार्ग मानें तो वह मिथ्या है।

प्रत्येक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, उस स्वभावके ऊपर

आस्था होनेसे ज्ञानप्रकाश बिना पढ़े ही खिलता जाता है। ऐसे स्वभावकी दृष्टि करावे वही शुद्ध उपदेश है। बाहरसे ज्ञान प्रगट होना बताये तो वह उपदेश शुद्ध नहीं। पढ़-पढ़ कर पंडित बने पर अन्तरका भान नहीं, ऐसी अन्तरदृष्टिके बिना पंडिताई बिना दानेका भूसा कूटने जैसी है।

❀ धर्मीके शुद्धात्मामें रंजित परिणामोंसे ज्ञानसमुद्र उमडता है ❀

काचलीका ध्यान निरन्तर अन्डाकी ओर है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिका ध्यान (दृष्टिका बल) निरन्तर स्वध्येयके ऊपर है, उसमें ही उसकी गाढ़ रुचि है, उससे निरन्तर उसका ज्ञान पोषित होता है, पक्षी तो पंखोंसे सेते हैं और काचली मात्र दृष्टिसे सेती है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टिका परिणाम शुद्धात्मामें ही रंजायमान है, अपने शुद्धात्माके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थसे रंजायमान नहीं होता, दृष्टि शुद्धात्मासे ही रंगी हुई (रंजित) है, ऐसी अन्तद्र्दृष्टिसे वह ज्ञानको सेता है, बिना पढ़े, बिना बांचे अन्तरकी निर्विकल्प शुद्धदृष्टिसे ही उसका ज्ञान बढ़ता रहता है, आत्माका स्वसंवेदन करते रहने स्वरूप ज्ञानशक्ति दिन-प्रतिदिन ज्ञानीकी बढ़ती जाती है। ऐसे ज्ञानसे ऐसी दृष्टिवाले असंख्यात तिर्यंच जीव पंचम गुण-स्थान में विराज रहे हैं, नर्कमें और स्वर्गमें ऐसी दृष्टिवाले असंख्यात जीव चौथे गुणस्थानमें हैं। तिर्यंचको शास्त्रकी

भाषा बांचते-लिखते या बोलते भले ही न आवे पर अन्तर-में अपूर्व भावश्रुतसे उसने शुद्धात्मा पकड़ लिया है, स्वज्ञेय-को जान लिया है। परज्ञेय सम्बन्धी ज्ञान घटता-बढ़ता हो यह पृथक् बात है, किन्तु स्वज्ञेयकी पकड़रूप अचिन्त्य ज्ञान-शक्ति ज्ञानीकी बढ़ती ही जाती है। देखो, केवलज्ञान होनेके पश्चात् महावीर भगवानकी वाणी राजगृहीमें विपुलाचल पर समवशरणमें प्रथमबार निकली और गौतम गणधरने उसे समझा, पश्चात् दो घड़ीमें बारह अङ्गकी रचना की। लिखने-बांचनेसे बारह अंगका पार नहीं मिलता। जिस प्रकार वर्तमान पढ़ाईमें पुस्तकें रट-रटकर सीखते हैं उस प्रकार द्वादशांग पुस्तकें बांच-बांचकर नहीं पढ़ा जा सकता; यह तो अन्तरात्मासे चैतन्यसागर उमड़े तभी द्वादशांगका ज्ञान खिलता है। अहा! अगाध चैतन्यसागरके समक्ष तो द्वादशांगका ज्ञान भी एक छोटी लहर जैसा है उससे अनंत-गुनी शक्ति केवलज्ञानमें है किन्तु वह ज्ञान बाहरी साधनों-से नहीं होता। जिसप्रकार बाहरसे पानी बहाकर समुद्रको नहीं भरा जा सकता किन्तु समुद्र स्वयं अपने मध्यबिन्दुसे उमड़कर भरता है; उसी प्रकार चैतन्यसागर आत्मामें इन्द्रियों द्वारा अथवा रागके द्वारा ज्ञानका भराव नहीं लाया जा सकता, ज्ञान स्वयं अपनेमें एकाग्र होकर स्वयंके मध्य-बिन्दुसे उमड़कर केवलज्ञानका भराव होता है अथवा स्वपर-प्रकाशकी चन्द्रमासे श्रुतका सागर उमड़ता है। और जिस प्रकार भूकंप तीव्र वायु भी समुद्रके भरावको नहीं रोक सकता

उसीप्रकार प्रतिकूलताओंका समूह भी ज्ञानके विकासको नहीं रोक सकता, शुद्धदृष्टिके बलसे स्वयं स्वयंमें एकाग्र होकर जो ज्ञानसमुद्र उमड़ता है उसे कोई रोक नहीं सकता। आत्माकी शुद्धदृष्टिके अभावमें ज्ञानको ज्ञान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसकी एकाग्रता ज्ञानमें नहीं होती वह तो रागमें एकाग्र होकर वर्तता है, इसप्रकारके बाहरी ज्ञानका मोक्षमार्गमें कोई मूल्य नहीं। जो ज्ञान अन्तर्मुखी होकर अपनी आत्माको न साधे उसका भला क्या मूल्य! उस ज्ञानको ज्ञान कौन कहे? शुद्धदृष्टि द्वारा ही ज्ञानका पार पाया जा सकता है और मोक्षमार्ग साधा जा सकता है। दर्शनविहीन जीव तप आदि क्रियायें करते हुये भी (हिंडंति संसारे) संसारमें ही भ्रमता है। (श्रावकाचार गा० ४०२)

❀ सिद्धपददायक शुद्ध उपदेश ❀

अपने विमल स्वभावरूपी नौका द्वारा आत्मा स्वयं ही स्वयंको तारनेवाला है—ऐसा कहा है। आत्मा अपने विमल-स्वभावके द्वारा अनन्त चतुष्टय सहित सिद्धिकी प्राप्ति करता है—ऐसा आगे कहते हैं।

इक्कं जिनसरूवं सयं खिपनं च कम्म बन्धानं
अनन्त चतुष्टय सहियं विमल सद्दावेन सिद्धि संपत्तं।

(उपदेश शुद्धसार ४९२)

आत्मा जिनस्वरूप है, अरिहन्त जैसा ही उसका स्वभाव है, ऐसे विमल स्वभावके अवलम्बनसे कर्मबन्धका क्षय करके आत्मा स्वयं अनन्तचतुष्टय सहित सिद्धिसंपदा प्राप्त करता है।

देखो यह शुद्ध उपदेश! अहो! सिद्ध जैसा हमारा एक ही प्रकारका स्वभाव है, सिद्धमें और हममें कोई अन्तर नहीं, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'-ऐसा शुद्ध उपदेश भगवानने दिया है—

'सर्व जीव छे सिद्ध सम जे समजे ते थाय' (गुजराती)
(सर्व जीव सिद्ध समान हैं—जो समझता है वही होता है)

'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीअे केटलुं? कर विचार तो पाम।' (गुजराती)

(श्रीमद् राजचन्द्र)

ऐसे अपने शुद्धस्वरूपकी प्रतीति करना भगवानके उपदेशका सार है, सिद्धमें जिस प्रकार राग आदि नहीं उसी प्रकार मेरे स्वभावमें भी राग आदि नहीं। सिद्ध भगवानको स्वभावके आश्रयसे कर्मबंधन छूटकर सिद्धदशा प्रगट हुई है, उसी प्रकार मुझे भी मेरे स्वभावके आश्रयसे सिद्धदशा होती है। यही सिद्धपद पानेकी रीति है। ऐसे मार्गका उपदेश करना ही सच्चा उपदेश है।

अज्ञानी जिनोपदेशको भूलकर जनरंजनमें रुक जाते हैं

शुद्ध स्वरूप दर्शानेवाले जिनोपदेशको भूलकर अज्ञानी जीव लोगोंकी अनुकूलता पानेके हेतु रागके पोषणका उपदेश देते हैं यह तो जिनोपदेशसे विरुद्ध जैसी जनरंजन करनेवाली कथा है, जो जनरंजनके लिये की गई हो वह विकथा है। ऐसे उपदेशसे लाभ माननेवाला जीव तो जिनद्रोही है, जिन-शासनका शत्रु है। रागको मोक्षका साधन कहना यह तो सम्यग्दर्शनसे विरुद्ध विकथा जैसी है। यह बात इस उपदेश-शुद्धसार गाथा ९६-९७ में श्री तारण स्वामीने लिखी है। रागसे धर्म माननेमें विकथा द्वारा जनरंजन करता है उसको जिनेन्द्र भगवानने 'जिनद्रोही' कहा है, वह जिनमार्गका उपासक नहीं किन्तु द्रोह करनेवाला है, और वह दुर्गतिमें पड़ता है।

विज्ञानघन ऐसा जो आत्मा उसके ज्ञानसे जो रहित है वह जीव रागमें ही रत रहता हुआ जनरंजन करता है, किन्तु आत्मरंजन अर्थात् आत्माको किस प्रकार रंजायमान किया जाये इसका उसको भान नहीं, और जिनमार्गके नाम पर विपरीत बात करते हैं वे जिनमार्गके द्रोही हैं, इसका फल तो नरकादिका घोर दुःख है। अत. इससे बचने हेतु तू सिद्धके समान अपने आत्माको जान ऐसा भगवानका उपदेश है।

[१०]

卐 दसवाँ प्रवचन 卐

[वीर सं. २४८९ भाद्रपद कृष्णा ११]

सर्वज्ञस्वभावी आत्माको जो साधे वही साधक

वीतरागका उपदेश वीतरागताके लिये ही है। बिना रागके मोक्षमार्गका भगवानने उपदेश किया है, स्ववीर्यसे सिद्धपद सधता है। बीचमें राग आवे तो वह जाननेकी वस्तु है किन्तु वह साधनेकी वस्तु नहीं। साधनेकी वस्तु तो वीतरागी ज्ञान-आनन्द ही है। ऐसा वीतरागी स्ववीर्य ही मोक्षका साथी है। सर्वज्ञदेव द्वारा कथित चारों अनुयोगमें आत्मशुद्धिका ही तात्पर्य है। जिनदेवका उपदेश स्वानुभव करने हेतु है, लोकरंजनके लिये नहीं।

इस 'उपदेश शुद्धसार'की ४९३वीं गाथामें श्री तारण-स्वामी कहते हैं कि— सिद्ध समान शुद्धस्वरूपी मेरा स्व-रूप है—ऐसी निश्चय स्वरूपकी दृष्टि करानेवाला उपदेश ही सारभूत उपदेश है।

आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, उसे भव्य जीव साधते हैं। ज्ञमय अर्थात् ज्ञानरूप परिणमन करता आत्मा, 'ज्ञ-स्वरूप' आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। सर्वज्ञको जैसा ज्ञानसामर्थ्य प्रगट हुआ वैसा ही मेरे स्वभावमें है। ऐसा सर्वज्ञ स्वरूप आत्माका निर्णय करना सर्वज्ञानका सार (ज्ञानसमुच्चयसार) है।

(देखो, ज्ञानसमुच्चयसार गाथा ११२-११३-११४)

आत्मा ज्ञानस्वभावी है। ज्ञान क्या करता है? तीन काल तीन लोकको जानता है। ज्ञानसे परिपूर्ण और रागद्वेषसे रहित, ज्ञानकी अस्ति और रागकी नास्ति— इसप्रकार अनेकान्तसे आत्मस्वरूपका निर्णय होता है। ऐसा आत्मस्वरूपका निर्णय करके उसमें लीन होना ही मोक्षमार्ग है। बीचमें रागादि व्यवहार आये किन्तु उस रागसे ज्ञानकी शुद्धता नहीं बढ़ती; ज्ञानकी शुद्धि स्वयंके सर्वज्ञस्वभावके आश्रयसे ही बढ़ती है'। ऐसा जानकर भव्यजीव-ज्ञानी जीव अन्तरमें सर्वज्ञस्वभावी आत्माको साधते हैं। इसप्रकार सर्वज्ञस्वभावका साधे वही सच्चा साधक है।

* सर्वज्ञस्वभावको जानता हुआ रागसे भिन्नतारूप भेदज्ञान होता है *

अपना स्वरूप सर्वज्ञस्वभावी है, इससे जो विरुद्ध है अर्थात् सर्वज्ञस्वभावको जो नहीं मानता और रागसे लाभ मानता है वह अज्ञानी जीव आत्मज्ञान रहित है और उसकी

समस्त शुभाशुभ क्रियायें अज्ञानमय हैं, मिथ्या हैं। एक ओर सर्वज्ञस्वभाव है और दूसरी ओर अज्ञान; सर्वज्ञस्वभावकी प्रतीतके बिना जो कुछ है वह सभी अज्ञानमें जाता है, उसका फल संसार है। रागकी एक कणी भी सर्वज्ञस्वभाव-में समाने योग्य नहीं; रागका अंश भी आ मिले तो सर्वज्ञ-स्वभाव ही सिद्ध नहीं होता। अर्थात् जिसकी धर्मबुद्धि है उसने रागके किसी अंशमें भी सर्वज्ञस्वभावी आत्माको नहीं माना। सर्वज्ञस्वभावी आत्माको मानते हुये रागसे भेदज्ञान हो ही जाता है।

वीतरागी शास्त्र तो सब प्रकारसे ज्ञान और रागकी भिन्नता बताते हुये भेदज्ञान कराते हैं। जिसमें शुद्धात्माका ज्ञान नहीं और रागके पोषणका प्रतिपादन है-ऐसे दुर्बुद्धि जीवोंके कहे हुए आगम मिथ्या-समय हैं। अरिहन्त और सिद्ध परमात्माके समान ही यह आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है, स्वयं ही परमात्मा हो सकता है—ऐसा जो नहीं बतावे और सदा अधूरा, दास, दीन या पराधीन ही माने, रागसे आत्म-प्राप्ति होनेको कहे, दूसरेकी सेवासे मोक्ष होनेको कहे अर्थात् पराश्रयभावको पोषे-तो वह जिनागम नहीं, सच्चा आगम नहीं, वह तो मिथ्यात्वपोषक पर-समय है, उसकी श्रद्धा छोड़नेका उपदेश है।

* वीतरागका उपदेश वीतरागताके लिये ही है *

अरे! वीतरागका कहा हुआ शुद्ध उपदेश कैसा होता

है उसकी जानकारी भी बहुतोंको नहीं, और भगवानके उपदेशके नाम पर कितनी ही गड़बड़ी चल रही है। भगवानका उपदेश तो रागसे विरक्ति और ज्ञानस्वभावमें एकाग्रता कराता है और यही मोक्षमार्ग है। वीतरागका उपदेश तो वीतरागताके लिये ही होता है। कोई कहीं रागके पोषणका अभिप्राय रखे तो वह जीव वीतरागताके उपदेशको समझा नहीं। भाई! अपने हितके लिये सच्चे आगमकी प्रतीति करना चाहिये। हितके लिये कौनसा उपदेश है और उसमें कौनसा विरुद्ध उपदेश है इसका विचार करके सच्चे-खोटेका निर्णय करना चाहिये। ऐसी अन्धी दौड़से मोक्षमार्ग हाथ नहीं आता।

रागरहित मोक्षमार्ग . स्ववीर्यसे सिद्धपद

मोक्षमार्ग कैसा है? कि जैसा सिद्ध स्वभाव है मैं भी वैसा ही हूं। ऐसे निज स्वभावको साधकर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-आचरणसे जीव सब कर्म-बन्धनोंको काटकर मुक्त होता है। सच्चे ज्ञानके द्वारा ही मार्गको साधा जा सकता है। सच्चे ज्ञान वाला जीव क्या करे? कि मोक्षके अनायतन ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्मोंको छोड़े तथा उन कुदेवादिको माननेवाले मिथ्यामति जीवोंका संग भी छोड़े। और वीतरागी देव-गुरु-धर्मकी प्रतीति कर उनके द्वारा कहा हुआ वीतराग मार्गका सेवन करे। वीतराग द्वारा कहे चार अनु-

योगोंका अभ्यास करना योग्य है। वे चार अनुयोग वीत-रागताके ही पोषक हैं। सर्वज्ञस्वभावी आत्माके भान बिना अज्ञानसे जो रागक्रिया करता हुआ धर्म मानता है उसमें केवल मिथ्याभावका सेवन है अर्थात् केवल अधर्म है। ज्ञानस्वरूप एवं आनन्दस्वरूप आत्मा जहां नहीं जाना वहां धर्म कैसा? और सुख कैसा?

* स्ववीर्यसे सिद्धपद....राग जाननेकी वस्तु है, साधनेकी नहीं *

सिद्ध भगवानकी तरह सर्वज्ञस्वभावी मेरा आत्मा है ऐसा जानकर साधक जीव स्वयं उस स्वभावके साधनसे ही सर्वज्ञ पदको साधता है। अनंतचतुष्टय प्रगट करने वाला साधन अपना स्वभाव ही है, रागके साधनसे वह सधता नहीं। राग जाननेकी वस्तु है, साधनेकी वस्तु नहीं। साधने वाली वस्तु तो ज्ञानस्वभावी आत्मा है। साधकके वीर्यकी गति अपने चिदानंद स्वभावकी ओर है, स्वभावकी ओरके वीर्यसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है, स्वभावसन्मुख शुद्धो-पयोगके बलसे आत्मा भव-समुद्रसे तरकर अग्रलोकमें पहुँचता है। इस प्रकार स्ववीर्य ही तारने वाला है, अन्य कोई तारने वाला नहीं, अंतर्स्वभावके पुरुषार्थसे अनंत जीवोंने संसारसे तरकर सिद्धपद पाया है। ऐसा पुरुषार्थ ही स्व-वीर्य है। पुण्य-पापकी ओरका वीर्य सच्चा स्व-वीर्य नहीं,

उससे कोई जीव संसारसे नहीं तरा। शुद्धोपयोगरूप स्व-वीर्यसे सिद्धि प्राप्त होती है, शरीरके बलसे या रागके बलसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

'उपदेश शुद्धसार' गाथा ४९४ में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि-

वीर्य च सिद्ध सिद्धं तारनतरनस्य अनुमोय सहकारं।
हित मित परिनययुक्तं कोमल सभाव ज्ञान सहकारं॥

सिद्ध भगवान स्वयंके वीर्यसे सिद्धि पाये हैं। आत्मा-का स्व-वीर्य ही तरणतारण है, वह स्वयं ही स्वयंको तारनेवाला है और सिद्धिको साधनेवाला स्ववीर्य निजानंद सहित है, हितकारी है, अनंत ज्ञानपरिणमन सहित है और कोमलस्वभावरूप है, शांत है। अन्य कोई तारणहार नहीं किन्तु आत्माका स्वसन्मुख वीर्य ही तारणहार है। वह वीर्य सर्वदा ज्ञान-आनंद सहित है।

देखो, यह तरनेका उपाय! वज्र शरीर हो, किन्तु वह परद्रव्य है, वह सिद्धिका साधन नहीं, राग तो सिद्धिकी प्राप्तिके समय होता ही नहीं अतः वह सिद्धिका साधन नहीं, वह तो उल्टा सिद्धिमें बाधक है, सिद्धिका साधन तो अंत-र्मुखी स्ववीर्य है, वह आत्मवीर्य ही तारणहार है, वह वीर्य स्वयंमें ज्ञान-आनंदकी रचना करने वाला है, किन्तु अन्यको रचे या अन्यको तारे-ऐसा आत्मवीर्यका काम

नहीं। वीतरागी देव-गुरु-वाणी तरनेमें निमित्तरूप हैं तो भी वे स्व से भिन्न हैं, वह आत्माके शुद्धोपयोगकी रचनाके कर्ता नहीं। आत्मा स्वयं ही स्ववीर्यसे शुद्धोपयोगकी रचना करके सिद्धि पाता है।

* मोक्ष जानेमें साथी कौन ? *

मोक्षका कारणरूप यह जो स्व-वीर्य है वह आनंदका सहकारी है रागका सहकारी नहीं, वह रागका तो नाशक है। ऐसा आत्मवीर्य आत्माका हितकारी है, और अनंत-गुणोंकी निर्मलताकी रचना करनेमें सहकारी है। देखो, यह मोक्षका साथी। मोक्ष जानेमें साथी कौन? कि तेरा आत्म-वीर्य वही तेरा साथी है, वही तेरा संगी और सारथी है। स्वमें लीन होकर अनंतगुणोंकी निर्मल पर्यायको रचता है, किन्तु वह रागमें लीन नहीं होता, रागको रचता नहीं। ऐसा कोमल-सहज-सीधा सरल वीर्य केवलज्ञानकी प्राप्तिका साधन है। ऐसे साधनसे सिद्ध भगवंतोंने सिद्धपद साधा है। राग-द्वेष तो कठोर है और यह वीतरागी स्ववीर्य कोमल स्वभावी है, केवलज्ञानका साथी होकर वह आत्माको भवसागरसे तार लेता है उससे स्वयं तरण-तारण है, ऐसे स्ववीर्यके बलसे आत्मा सदा आनन्दमें ... सदाकाल विश्वको जानता है तो भी

आती, सदाकाल अपने केवलज्ञानादि स्वभावमें रमता रहता है ऐसी वीर्यगुणकी सामर्थ्य है।

इसप्रकार ज्ञान और आनन्दकी श्रद्धा-चारित्र आदि जैसे सर्व गुणोंके परिणमनमें वीर्यका सहकारीपन है किन्तु एक भी गुणके निर्मल परिणमनमें रागका सहकारीपन नहीं है। अनन्तकाल तक केवलज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्दरूप से परिणमन करता है तो भी आत्माका वीर्य ऐसे बल वाला है कि वह किंचित् भी थकता नहीं, सर्वदा स्फूर्तिवान रहता है। एक समयमें अनन्त स्वगुणोंकी निर्मल पर्यायोंको रचता है ऐसा बल आत्मवीर्यमें है, रागमें ऐसा बल नहीं। इस प्रकार राग और स्ववीर्य भिन्न है। अहो! जैनतत्त्व अलौकिक है, इसके सूक्ष्म न्याय समझनेमें अपूर्व भेदज्ञान होता है। यह कोई साधारण बात नहीं यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त-देव द्वारा जाने हुये और कहे हुये तत्त्व हैं।

* जैनधर्मके चार अनुयोगोंमें आत्मशुद्धिकाही तात्पर्य है *

श्रावकाचारमें गाथा ३४७ से ३५७ तक आत्महितके हेतु शास्त्रके चार अनुयोगोंका अभ्यास करनेको कहा है। शुद्ध दृष्टिके उद्यमपूर्वक गृहस्थ-श्रावकोंको चार अनुयोगोंका अभ्यास करना चाहिये। प्रथम कथानुयोगमें चौवीस तीर्थंकरोंका तथा गणधरादि महापुरुषोंका जीवन है, उससे जीवनमें अधर्मकी रुचि छूटती है और धर्मकी रुचि बढ़ती है-ऐसी कथाओं

द्वारा उपदेश दिया है। द्रव्यानुयोगमें छह द्रव्योंका स्वरूप बताते हुये शुद्धात्माकी महिमा बताई है, उसके अनुभवकी रीति बताई है, निश्चय-व्यवहार दोनों बताते हुये निश्चय स्वरूपमें आरूढ होनेको कहा है। भगवानकी वाणीमें चार अनुयोग आये हैं। जिसको चार अनुयोगोंमेंसे किसीकी अरुचि है उसे अध्यात्मकी रुचि नहीं। पंडित टोडरमल्लजीने "मोक्षमार्ग प्रकाशक" के आठवें अध्यायमें चार अनुयोगोंके उपदेश सम्बन्धी सरस स्पष्टीकरण किया है।

चार अनुयोग शाश्वत हैं, अर्थात् जिसप्रकार जगतमें छह द्रव्य सदा सर्वदा हैं, तीर्थंकरादि महापुरुषोंकी सर्वदा परम्परा चलती रहती है, लोकरचना शाश्वत है, उसीप्रकार उसका वर्णन करनेवाले शास्त्रोंकी परम्परा भी जगतमें अनादि-से चली आयी है। जिसप्रकार तीर्थंकर सदाकालसे होते आये हैं उसीप्रकार उनकी कथायें भी सदाकालकी परम्परासे चली आती है। तीर्थंकरादिके नाम आदि तो बदलते हैं पर उनकी कथायें तो चलती हैं। इसी रीतिसे तीन लोककी रचना, उसमें महा विदेहक्षेत्र, नन्दीश्वर द्वीप आदि असंख्यात द्वीप-समुद्रकी तथा स्वर्ग-नरककी शाश्वत रचना है, उसका वर्णन त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि करणानुयोगमें आता है। जिस-प्रकार वे वस्तुयें शाश्वत हैं उसीप्रकार उनका वर्णन करने-वाले शास्त्र भी सदाकालसे होते हैं और उनका ज्ञान करनेवाले जीव भी सदाकालसे होते हैं। (अर्थसमय, शब्दसमय

और ज्ञानसमय तीनोंकी सन्धि है) विद्वानोंको, वस्तुस्वरूप बतानेवाले ऐसे चार अनुयोगोंका आत्महितार्थ अभ्यास करना चाहिये उसका नाम ज्ञानपूजा है। चार अनुयोगोंके अभ्यास द्वारा वस्तुस्वरूप समझकर शुद्धात्माका ध्यान करना उपदेशका सार है। करणानुयोग द्वारा भी स्वात्म-चिंतन करके स्व-स्वरूप ही आराध्य है। षट्खंडागम आदि करणानुयोगमें जीवके सूक्ष्म परिणाम बताये हैं, उन सूक्ष्म परिणामोंके ज्ञान द्वारा अपने परिणाम शान्त करते हुये वीतराग स्वरूपमें रमणतारूप होना—यह करणानुयोगके अभ्यासका सच्चा फल है। चार अनुयोगोंका फल वीतरागता ही है। जैनशास्त्र वीतरागताको ही पोषते हैं अर्थात् आत्माका शुद्धस्वरूप बताते हुये उसकी दृष्टि और उसमें एकाग्रताका ही उपदेश देते हैं, यही शुद्ध उपदेशका सार है।

देखो, शास्त्रोंका अभ्यास किस लक्ष्यके लिये करना यह भी इसमें आया है। पंडिताईके मान हेतु नहीं किन्तु स्वयंके ज्ञानप्रयोजनकी सिद्धिके लिये चार अनुयोगका अभ्यास करना, उसमेंसे स्व-स्वरूप निश्चित करके उसका चिंतवन करना। स्व-स्वरूपकी आराधना यह चार अनुयोगका सार है। वीतराग स्वरूपमें उपयोगको जोड़नेसे ही (शुद्धोपयोगसे ही) सम्यग्दर्शनादि प्रगट होते हैं। इसके अतिरिक्त बाहरके साधनोंके जोड़नेसे अथवा रागसे सम्यग्दर्शनादि नहीं होते। अपने अन्तर्स्वभाव-समुद्रमें डुबकी लगानेसे सम्यग्दर्शन और

परम आनन्दकी अनुभूति होती है वही आत्माका निश्चय-पद है और ज्ञानी द्वारा स्वसंवेद्य है। इसके अतिरिक्त बाहरमें—रागमें गोता लगानेसे कुछ भी हाथ नहीं आता।

वीतरागी करणानुयोगमें सर्वज्ञदेवने सूक्ष्म परिणामोंकी तथा तीनलोककी रचनाका वर्णन किया है वह अन्यत्र कहीं नहीं है इसप्रकार करणानुयोग द्वारा भी निःशंक होकर मिथ्यात्वादि शल्य छोड़ना। सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी प्रतीति कर, मिथ्यात्वादि शल्य छोड़कर यथार्थ वस्तुस्वरूप जानना चाहिये। शुद्धदृष्टि, द्रव्यदृष्टि आत्माके पूर्णस्वरूपको देखने-वाली है और उससे ही शुद्ध सम्यग्दर्शनका लाभ होता है। ऐसे शुद्धआत्माको लक्षमें रखकर चार अनुयोगोंका चिन्तन करना चाहिये। शुद्धदृष्टिके बिना शास्त्रोंका सच्चा रहस्य समझमें नहीं आता।

चार अनुयोगोंका अभ्यास करनेको कहा है परन्तु उस प्रकारकी बुद्धिकी मन्दता आदि कारणसे कदाचित् उसका अभ्यास नहीं हो सकता, तो उसका निषेध न करे किन्तु आदर करे, क्योंकि चार अनुयोग वीतरागी जिनवाणी है, उसकी अरुचि करना जिनवाणीकी ही अरुचि है। यहां तो उसके अभ्यास करनेमें भी शुद्धात्म-चिंतनकी मुख्यता है। यह मुख्य बात है। चार अनुयोगोंको पढ़ पढ़के फल क्या निकलेगा? कि शुद्धात्मासे सन्मुखता करना। जो शुद्धात्मामें सन्मुखता नहीं की तो शास्त्र-अभ्यासका यथोचित फल नहीं

आया अर्थात् वह सचमुच शास्त्र पढ़ा ही नहीं, उसने तो अपनी कल्पनासे राग ही पोपा है। यहां कहते हैं कि चरणानुयोग द्वारा भी भगवानने चैतन्यस्वभावका अनुभव करना ही बताया है। राग और रागकी क्रियाओंका (अणुव्रत–महाव्रतादिका) ज्ञान भले ही कराया पर मोक्षके अर्थ तो उस रागके आचरणसे भिन्न ऐसे चैतन्यस्वभाव-का ही अनुभव करनेका आदेश दिया है। ऐसे विना अनुभव-के चरणानुयोग सच्चा नहीं होता। श्रावकके अथवा मुनिके अंदर शुद्धात्माकी दृष्टिसहित भूमिकाके प्रमाणमें रागादि होते हैं, किन्तु रागमें धर्मबुद्धि नहीं, रागमें कर्तृत्वबुद्धिरूप एकता-बुद्धि नहीं। जिसकी रागमें ही एकताबुद्धि है वह रागमें ही धर्म समझ लेता है, उसको विना रागका आचरण धर्मीको कैसा होता है उसका भान नहीं अर्थात धर्मीके चरणानु-योगको वह पहचानता नहीं।

❀ ग्रन्थाधिराज समयसार ❀

इसप्रकार द्रव्यानुयोग, उसमें भी द्रव्य–गुण–पर्यायोंके वर्णन द्वारा जीव-अजीवकी भिन्नता समझाते हुए शुद्धात्माकी दृष्टि कराई है, उसका अभ्यास करना,–किन्तु किस प्रकार ? –कि स्वलक्षसे अभ्यास करना। देखो, यह श्रावकके लिये उपदेश है, यानी समयसार आदि द्रव्यानुयोगका अभ्यास श्रावकोंको भी होता है। द्रव्यानुयोग केवल मुनियोंके लिये

ही नहीं। अनादिके अप्रतिबुद्ध जोकि, देहको ही आत्मा मानते हैं ऐसे मिथ्यादृष्टिओंको समयसार द्वारा समझाया गया है। चार अनुयोगोंमें द्रव्यानुयोग स्वानुभवके हेतु मुख्य है, और उसमें भी इस काल समयसार मुख्य है। उसका अभ्यास सबको करना चाहिये।

❀ जिनोपदेश स्वानुभव करनेके हेतु है,
लोकरंजनके लिये नहीं ❀

स्वानुभव करानेवाला जो जिनोपदेश है उसमें किंचित् भी शंका नहीं करना चाहिये। जिसकी मिथ्यात्वशल्य नहीं मिटी, रागकी रुचि नहीं गई वह जीव जिनेन्द्रके उपदेशमें शंका करता है। रागका अवलंबन छुड़ानेवाला जिनोपदेश अज्ञानीको रुचता नहीं क्योंकि उसको रागकी मिठास है। अनंत जीव, अनंत परमाणु, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय आदिको जानते हुए चिदानन्द स्वभावकी रुचि करना और रागकी रुचि छोड़ना, ऐसा जो वीतरागी उपदेश उसमें अज्ञानी शंका करता है, जिनवचनमें शंका करनेवाला जीव मिथ्यात्व-शल्यके कारण संसारमें भ्रमता है। उसको अपनेमें रागकी रुचिकी शल्य है अतः वीतरागी जिनवचन उसको रुचता नहीं, और रागसे धर्म माननेवाले कुगुरुओंकी शरण लेकर वह जीव संसार-समुद्रमें डूबता है। जिनरंजन छोड़कर वह जनरंजनमें लगा है। जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित वीतराग स्वभावका

रंग छोड़कर वह रागके रंगमें रंगा है, अतः रागमें धर्म मनानेवाले कुगुरुके वचन उसे मीठे लगते हैं। समन्तभद्र-स्वामी कहते हैं कि भाई! परमतके रागपोषक वचन भले ही तुझे कोमल और मीठे लगते हों, पर उनमें कोई निजगुणकी प्राप्ति नहीं। निजगुण जो सम्यग्दर्शन आदि अमृत है उससे तो वे रहित ही हैं और वे मिथ्यात्वरूपी विषके पोषक हैं, वीतरागके वचन ही आत्मगुणकी प्राप्ति करानेवाले हैं।

"वचनामृत वीतरागनां परम शान्तरस मूल"

—श्रीमद् राजचंद्र

रागसे धर्म माने यह तो सभी लोकरंजनकी रीति है। वीतराग देवका उपदेश तो आत्मरंजनके हेतु (आत्माका अनुभव करनेके लिये) है, यह कोई लोकरंजनके लिये नहीं है। लोग मानें या न मानें किन्तु-वीतरागका कोई उपदेश वदलता नहीं है। जगतमें अनन्त आत्मा हैं, प्रत्येक भिन्न स्वतन्त्र हैं, और अनन्त आत्मा सिद्ध हुये हैं, सिद्धभगवान जैसा ही प्रत्येक आत्माका स्वरूप है, ऐसा द्रव्यानुयोगके शास्त्र दर्शाते हैं। अत्यन्त आदरपूर्वक ऐसे शास्त्रोंका चिंतन करना चाहिये।

एक 'जिनोक्त' और दूसरा 'जनोक्त' ऐसे दो मार्ग हैं। जिनोक्त मार्ग तो वीतराग है और जनोक्त ऐसे लौकिक मार्गमें बाहरसे धर्म मानकर उसमें वहुत लोग लग जाते हैं। इसमें कोई राजा या प्रधान जैसा व्यक्ति आवे तो लोगोंकी

टोली भेड़िया धसानकी तरह उसके साथ दौड़ जाती हैं; जैसे भेड़ोंका झुंड बिना विचारे एकके पीछे दूसरा चला जाता है वैसे ही लोकजन अपने हितका कोई भी विचार किये विना कुमार्गमें चले जाते हैं। अरे, यह तो 'जनरंजन' है, इसमें 'जिनरंजन' नहीं है। जिसको आत्माकी सच्ची श्रद्धा ज्ञात नहीं, भेदज्ञानकी जानकारी नहीं वह वीतराग-मार्गको भूलकर अज्ञानका अनुमोदन करता है, अज्ञानियोंमें बाहरका त्याग आदि देखकर उनमें उसकी आस्था आ जाती है किन्तु उसमें आत्माका कोई हित नहीं है। यह तो जनरंजनका मार्ग है इससे लोग कदाचित् राजी हो जायें, किन्तु तेरे स्वयंका आत्मा इससे प्रसन्न नहीं होगा। परको सुखी कर दूँगा, परका उद्धार कर दूँगा, देशको स्वतंत्र करा दूँगा, पृथ्वीके ऊपर स्वर्ग जैसा सुख उतार दूँगा, ऐसी बातें जगतको अच्छी लगतीं हैं, किन्तु भाई! इसमें तो तेरा किंचित् हित नहीं है, परकी कर्तृत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्वका विष इसमें भरा है, यह तो जीवका अहित करनेवाला है। सर्वज्ञदेव द्वारा प्रतिपादित अनेकान्तमय वस्तुस्वरूप वीतराग है, अमृतकी भाँति वह जीवका परम हित करनेवाला है। ऐसे जिनोक्त शुद्ध तत्वको जो नहीं साधता वह सदा अव्रती एवं मिथ्यात्वी ही है। अतः श्री तारणस्वामी कहते हैं कि हे भव्य! तू अपने आत्माके कल्याणके लिये ऐसे जिनोक्त मार्गकी प्रतीति कर, शुद्ध तत्वको लक्ष्यमें ले।

ग्यारहवाँ प्रवचन

[वीर सं. २४८९ भाद्रपद कृष्णा १२]

'मैं पायो जिनवर अपनो'

सम्यक्त्व परमसुख है, मिथ्यात्व बड़ा दुःख है

भगवानके द्वारा कहे उपदेशमें मोक्षमार्ग क्या है उसका वर्णन चलता है। शुद्ध आत्माकी दृष्टि मोक्षमार्गका मूल है, ऐसी दृष्टिके द्वारा सिद्ध भगवानोंने सिद्धि प्राप्त की है। यहां उपदेश शुद्धसारकी ४९५वीं गाथामें श्री तारण स्वामी कहते हैं कि—

सिद्धं च सव्व सिद्धं सिद्धं अंगं च दिगन्तरं सिद्धं।
सिद्ध अर्थति अर्थं सामर्थ्यं समय दृष्टि अनुमोयं॥

भावार्थ ऐसा है कि बारह अंग (द्वादशांग) रूप जिन-वाणीका साररूप जो शुद्ध आत्मा है उसकी दृष्टि द्वारा सभी सिद्ध भगवानोंने सिद्धि प्राप्त की है। द्वादशांगके साररूप शुद्धआत्माको ध्येय बनाने से ही वह परमात्मा हुए हैं। आत्मामें गुप्तस्वभावरूपसे (शक्तिरूपसे) जो परमात्मपना

था उसका भान और ध्यान करते हुये वह परमात्मपना प्रगट हुआ, मोक्षदशा प्रगटी। इसप्रकार परमात्मशक्तिसे भरे हुये अपने आत्माका ध्यान करना वह भगवानके उपदेशका सार है, वही मोक्षमार्ग है।

❀ आत्माके गुप्त स्वभावके साथ मिलना मोक्षमार्ग है ❀

आत्माके स्वभावमें गुप्त अर्क है, अर्क यानी सूर्य, चैतन्य-सूर्य केवलज्ञानस्वभावसे भरपूर है, उसकी सन्मुख परिणतिसे, गुप्त आत्माके साथ मेल कर-करके मोक्ष सधता है। अहो! ऐसे मोक्षका प्रकाश करने वाले जिनेन्द्रकी जय हो। अनंत शक्तिरूप–चैतन्यचमत्कारसे भरे हुये अपने गुप्त स्वभावके साथ मिलन करते हुये (उसमें एकाग्र होते हुये) जिनपदका प्रकाश होता है, अर्थात् केवलज्ञान प्रगटता है। संयोगके साथ, रागके साथ, पुण्यके साथ मिलान करते हुये ज्ञान-प्रकाश होता नहीं है। रागके साथ मेल किया जाय तो कर्म-विजयी नहीं होता। रागके साथ संधि तोड़कर जिसने अपने स्वभावके साथ उपयोगकी संधि जोड़ी वही कर्म-विजयी है। उसका स्वभावके साथ मेल है, मिलन है, और रागादि परभावोंके साथ कुमेल है, भिन्नता है। इस भांति गुप्त आत्मस्वभावके साथ मिलन करते हुये मोक्षमार्ग होता है।

देखो, यह मोक्षका मार्ग! अपना स्वरूप गुप्त शक्तिसे भरा है वह निश्चय है, उसके आश्रयसे ही जीव पूर्ण सिद्धिको

भगवानको ऐसा केवलज्ञान हुआ और तीनलोकमें आनन्द हुआ .ऐसा मोक्षका साधक भव्य जीवरूपी कमल प्रफुल्लित हुआ . प्रसन्न होकर पूछने लगे कि जनसमुदायमें हलचल किस कारण है? यह हर्षका कोलाहल कैसा है? उत्तर मिला कि केवली भगवान श्री महावीर तीर्थंकरका शुभागमन हुआ है।

समवशरणमें भगवान महावीरको देखकर राजा श्रेणिकको अत्यन्त प्रीति हुई, परन्तु भगवान महावीरको तो किसीके ऊपर राग नहीं था वह तो वीतराग थे और वीतरागताका ही उपदेश देनेवाले थे। श्री भगवान महावीरकी वाणीमें ऐसा आया कि राजा श्रेणिकके भीतर आगामी प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होने योग्य भाव जाग उठा है, तब राजा श्रेणिक ऐसा सुन अत्यन्त प्रसन्न हुये और आगे राजा श्रेणिकको केवली भगवानसे कुछ मांगनेकी इच्छा नहीं रही। अहो, मेरे हृदयमें ही मेरा परमात्मपद विराजता है, पद्मनाभ तीर्थंकर मेरे अन्तरमें विराजे हैं—ऐसा उनको भान था, क्षायिक सम्यक्त्व था, वीतरागभावकी किरणका प्रकाश आत्मामें प्रगट हो चुका था। अन्य कोई व्रत-चारित्र नहीं था परन्तु शुद्ध सम्यग्दर्शनके बलसे एक भवके पश्चात् केवलज्ञान प्रगट कर तीर्थंकर होंगे। वाह! राजा श्रेणिकके अन्तरमें पद्मनाभ तीर्थंकर बैठे हैं! भविष्यकी पर्याय आत्माके गर्भमें पड़ी है। भविष्यमें कोई पर्याय बाहरसे नहीं आती, आत्मा ही अपनी

आवश्यकता नहीं। राग आत्माका सच्चा प्राण नहीं, चैतन्य-भाव ही आत्माका सच्चा प्राण है, वही सच्चा जीवन है। ऐसे आत्माको जानकर उसकी साधना करते हुये पूर्ण आनन्दरूप मोक्ष प्रगटे यह उसका फल है, पुण्यबन्ध हो और स्वर्ग मिले यह कोई उसका वास्तविक फल नहीं। मोक्षमार्गके फलसे स्वर्ग नहीं मिलता, मोक्ष मिलता है। स्वर्ग मिले तो वह बन्धका-रागका फल है। बन्ध-मोक्षके सच्चे कारणकी जीवोंको जानकारी नहीं और मोक्षमार्गके नाम पर भ्रांतिमें पड़कर रागको ही धर्म मान लेते हैं।

❀ धर्मी जीवोंका आदर्श ❀

धर्मी कहता है कि हे भगवान! मैं तो आपको (अर्थात् शुद्धआत्माको) आदर्शरूप देखकर मोक्षमार्गको साध रहा हूँ। राग मेरा आदर्श नहीं, आपकी भांति शुद्धता हो वही मेरा आदर्श है। सब पदार्थोंमें प्रयोजनभूत सिद्धपद आपने प्राप्त कर लिया है और मैं भी आपके बताये मार्गकी ही साधना कर रहा हूं... अनुमोदन कर रहा हूं, आनन्दपूर्वक उसका अनुसरण कर रहा हूं (अनु-मोदन अर्थात् आनन्द-सहित अनुसरण ऐसा अर्थ किया है।) परम आनन्दस्वभावका प्रमोद पूर्वक अनुसरण करनेसे अतीन्द्रिय आनन्दरूप मोक्ष प्रगट होता है। सिद्ध भगवानोंने रत्नत्रयधर्मका सार प्राप्त कर लिया है, और तीर्थंकर भगवान समवसरणमें उसका

ही उपदेश देते हैं। हे जीव! तुम भी सम्यक्त्वादिका साधन करो और मिथ्याभावोंको छोड़ो। मिथ्यात्व परम दुःख है और सम्यक्त्व परम सुख है।

मिथ्यात्वं परमं दुखं सम्यक्त्वं परमं सुखं।
तत्र मिथ्यामतं त्यक्त्वा शुद्ध सम्यक्त्व सार्द्धय ॥

(श्रावकाचार गाथा-२९६)

महान दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वको छोड़कर परम सुखके कारणरूप शुद्ध सम्यक्त्वको हे जीव! तू अपना साथी बना। मोक्ष जानेमें सम्यग्दर्शन ही तेरा साथी है।

कौन दुःखी?—कौन सुखी?

बाह्य संयोगको दुःखका कारण नहीं कहा किन्तु भीतरका मिथ्यात्व ही महा दुःखदायक है। मिथ्यात्व सहित जीव त्यागी हो जाय तो भी दुःखी ही है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-धारी मुनिवर और धर्मात्मा परम सुखी हैं। परम आनन्दस्वभावसे परिपूर्ण परमात्मा जिसकी दृष्टिमें नहीं आया वह दुःखी ही है। और परमानन्द स्वभावमें जिसकी दृष्टि पड़ी है वह सुखी है। विना धनके दुःख और धनसे सुख ऐसा नहीं है। मिथ्यात्वसे दुःख और सम्यक्त्वसे सुख यह सिद्धान्त है। अतएव हे जीव! सम्यक्त्वादिका साधन करो और मिथ्यात्वादिको छोड़ो!

प्रगटमें पापके उदयसे कदाचित् प्रतिकूल संयोग हों, नर्कमें हो या तिर्यंचमें हो, रहनेके लिये गृह आदि न हो, पर भीतरसे जिसकी दृष्टि रागसे भिन्न चिदानन्द परिपूर्ण स्वभावमें ही हो वह जीव परम सुखी है। संयोगमें तो मैं हूं ही नहीं, तो संयोगका दुःख मुझे कैसा? और स्वभावका जिनको भान नहीं और रागसे मूर्छित हो गये हैं ऐसे मिथ्या-दृष्टि जीव देवलोकमें भी दुःखी ही हैं, उनको संयोग क्या सुख दे सकते हैं? अस्तु हे जीव! तू मिथ्यात्वके दुःखके कारण जानकर उन्हें छोड़ और सम्यक्त्वके परम सुखका मूल जान उसको अपना साथी बना।

बड़ी भक्तिसे शुद्धात्माकी उपासना—यही जिनवाणीकी विनय

जहाँ शुद्धात्माके ऊपर दृष्टि होती है वहाँ ही सामायिक आदि षट्कर्म यथार्थ होते हैं, अथवा श्रावकके षट्कर्म (देवपूजा, गुरुपास्ति आदि) भी शुद्धदृष्टि पूर्वक ही यथार्थ होते हैं। वीतरागी देव-गुरु कैसे हैं और उनने क्या कहा है, उसके परिचयके विना सच्ची उपासना कहाँसे हो? (यह बात श्री तारणस्वामीने श्रावकाचार गाथा ३२०-३२१-३२२में की है, और अष्ट प्रवचन प्रथम भागमें उसका विवेचन आ गया है। (देखो गुजराती संस्करण पृष्ठ ८९-९०-९१, हिन्दी संस्करण पृष्ठ ९६-९७-९८)

बड़ी भक्ति पूर्वक शुद्धात्माकी आराधना करना जिन-

वाणीकी सच्ची विनय है। यह बात ज्ञानसमुच्चयसार गा. ६५में कही है, उसका विवेचन अष्ट प्रवचन भाग १ गुज. संस्क. पृष्ठ ८७-८८, हिन्दी-संस्करण पृष्ठ ९५ पर देखो) जिनवाणीको मस्तकके उपर विराजमान करके अत्यंत आदर करे पर उसमें क्या कहा है वह समझे नहीं तो उसका वास्तविक लाभ कहांसे हो? वस्तुके यथार्थ स्वरूपको पहिचानना चाहिये तो ही सम्यग्ज्ञानका लाभ होता है।

※ ध्येय बिना ध्यान किसका?
उपयोगमें शुद्धात्माको धारण करना धर्म ※

अनंत गुणस्वरूप आतमा अपने आपमें ध्यानसे अनुभवमें आता है—

ध्यान वडे अभ्यंतरे देखे जे अशरीर,
शरमजनक जन्मो टळे पीये न जननी क्षीर।

(योगसार-गुजराती)

अज्ञानसे इस शरीरका भार धारण करते-करते चारों गतियोंमें भ्रमते रहना लज्जाप्रद है। अंतरमें देहसे भिन्न अशरीरी चैतन्यको देखनेसे लज्जाप्रद जन्मोंका निवारण हो जाता है। पश्चात् उसकी अन्य माता नहीं होती। उत्कृष्ट शुक्लध्यान यहां अभी नहीं पर धर्मध्यान तो है! ध्यान

किसका करना है उस ध्येयको तो पहिचानो! ध्येय जिसका खोटा हो उसे सच्चा ज्ञान कहांसे होगा? अनन्त पदार्थोंके मध्यमें रहते हुये भी सबसे पृथक् और अपने अनन्त गुण-पर्यायोंके साथ परस्पर एकमेक, ऐसा आत्मा ध्यानके द्वारा अनुभवमें आता है, यही धर्मीका ध्येय है। जिन भगवानके शासनके अतिरिक्त आत्माका यथार्थ स्वरूप अन्यत्र कहीं नहीं। अनन्त आत्मा, प्रत्येक आत्मा स्वतंत्र अपनेमें पूर्ण, उसमें अनन्तगुण, अनन्त पर्याय, प्रत्येक पर्यायमें अनन्त अविभागप्रतिच्छेद,—ऐसा आत्मा धर्मीके अनुभवमें आया है। ऐसा अनुभव किसप्रकार होता है? कि 'स्वयं अपने स्वभाव-सन्मुख ज्ञानसे ऐसा आत्मा अनुभवमें आता है, कोई विकल्पका उसमें आश्रय नहीं। अज्ञानी ऐसे आत्माको प्रतीतिमें-अनुभवमें लेता नहीं। धर्मीने अंतर्दृष्टि द्वारा अपने ध्रुव आत्मधाममें शुद्ध आत्माकी स्थापना की है, परभावोंसे पीछे मुड़कर स्वसन्मुख उपयोगमें आत्माको रखा उसका नाम धर्म है। पहले अज्ञानपनसे उपयोगमें परभावोंको धारण किया, उसके बदले अब भेदज्ञान करके, परभावोंसे उपयोगको पृथक् जानकर, उपयोगमें शुद्धआत्माको धारण किया, यही धर्म है। धर्म कहो या आत्माकी शुद्धि कहो। आत्माकी शुद्धि हेतु तीर्थंकरोंका अवतार है अर्थात् वह धर्म-अवतार है। जिसमें धर्मका अवतार, धर्मकी उत्पत्ति होती है वही सच्चा धर्म-अवतार है।

ज्ञानी जीव धर्मध्यान व शुक्लध्यान दोनोंमें पर पदार्थोंसे विमुख होकर एक अपने शुद्ध आत्मध्यानका अभ्यास करते हैं, यही वास्तवमें मोक्षमार्ग साधक धर्म है- जो साधकको निज स्वाभाविक अनन्तगुणोंके धारी आत्मामें स्थापित कर देता है। (ज्ञान समुच्चयसार पृष्ठ-३७)

सिद्धभगवान शुद्धताका उपदेश देते हैं; वही तरणतारण हैं

आगे उपदेश-शुद्धसार गाथा ४९६में कहते हैं कि सिद्ध भगवान अपने शुद्ध स्वभावसे जगतके जीवोंको ऐसा दर्शा रहे हैं कि ऐसा शुद्ध स्वभाव ही तरणतारण है, उसको दृष्टिमें लाओ।

तारन तरन सुभावं उवइट्ठं इष्ट दृष्टि सुद्धं च ।
अनुमोय सहकारं उवएसं विमल कम्मविलयंति ॥ ४९६ ॥

इस अधिकारका नाम मोक्षमार्ग अधिकार है। कैसा आत्मा दृष्टिमें लेनेसे मोक्षमार्ग होता है? तो कहते हैं कि सिद्ध भगवान जैसा स्वभाव दृष्टिमें लेना इष्ट है, शुद्ध है, वह आनन्दका सहायक है, और वह तारण-तरण अर्थात् मोक्षका कारण है। ऐसे शुद्ध आत्माका उपदेश भगवानने दिया है।

सिद्ध भगवन्तोंका शुद्धस्वभाव अन्य जीवोंको भी उनके शुद्ध स्वभावका लक्ष करनेमें निमित्त है, इससे वह तरण-

तारण हैं, अपनी शुद्धतासे स्वयं तरे हैं और दूसरोंके तरनेमें निमित्त हैं। सिद्धमें जो है वह मेरेमें है, सिद्धमें जो नहीं है वह मेरा स्वरूप नहीं है, –ऐसी प्रतीति करके भेदज्ञानसे जीव भवसमुद्रसे तरता है। सिद्धको पुण्य होता है? नहीं। अस्तु पुण्य आत्माका स्वरूप नहीं है। सिद्धको वाणीका योग नहीं, परन्तु उन्हें शुद्ध स्वभाव द्वारा ही जानो, वह शुद्धताका उपदेश दे रहे हैं, सिद्धका स्वरूप लक्षमें लेनेवाले को आत्माका शुद्धस्वरूप लक्षमें आता है। अतः सिद्ध-भगवान बिना वाणीके भी शुद्धस्वभावका ही उपदेश दे रहे हैं और उनका स्वरूप समझनेवाले भी वाणीके अवलम्बनके बिना स्वरूपको लक्षमें लेते हैं। परन्तु उपदेशकी वाणी क्या करती है? —जो स्वयं शुद्ध स्वरूपका लक्ष करे उसको वह निमित्त होती है। इस भांति सिद्धभगवान भी शुद्धस्वरूपका लक्ष करने वालोंके निमित्त होते हैं।

शुद्धकी भावनासे सिद्ध पद ऐसी श्रद्धा मोक्षकी मुद्रा है

जो शुद्ध स्वरूपको लक्षमें लेते हैं उन्हें ही संवर-निर्जरा होते हैं, और राग तो आस्रव-बन्धका ही कारण है। राग-की भावनासे संसारभ्रमण होता है और शुद्धस्वरूपकी भावनासे सिद्धपद प्राप्त होता है। शुद्धस्य भावना कृत्वा . शुद्धस्वरूपकी भावना (श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता) करते करते ही अनन्त जीव सिद्धपद पाये हैं और पायेंगे।

आत्माका शुद्ध स्वभाव इष्ट है, सिद्धभगवान उसके आदर्श हैं, आदर्शपनसे (दर्पणवत्) उनको शुद्ध स्वरूप दिखता रहता है। जिस भांति स्वच्छ दर्पणमें देखनेवालेको अपना मुख दिखता है उसी प्रकार सिद्ध दर्पणमें देखनेसे आत्माका शुद्धस्वरूप दिखता है। ऐसी शुद्धस्वरूपकी दृष्टि ही इष्ट है। वह परम आनन्दकी सहायक है; शुद्धदृष्टि करने से ही परम आनन्दका वेदन होता है अतएव वह आनन्दकी सहायक है, रागकी सहायक नहीं। रागमें तो आकुलताका वेदन है और शुद्ध श्रद्धा तो निराकुल आनन्द सहित प्रगट होती है। अहा! पहले ऐसे स्वरूपकी श्रद्धा तो करो। सच्ची श्रद्धा किसको कहते हैं इसकी भी लोगोंको जानकारी नहीं, सच्ची श्रद्धा करनेवालेको मोक्षकी छाप लग गई उसको स्वयं अपने मोक्षका निःशंक विश्वास हो गया।

ॐ सिद्ध भगवानोंकी भांति . . ॐ

राग रहित आनन्दमय मोक्षमार्गको सिद्धभगवान निज-स्वभावसे ही दिखा रहे हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसा धर्मी जानता है। ऐसे शुद्ध उपदेशको जो ग्रहण करता है अर्थात् सिद्ध जैसे अपने स्वरूपको जो श्रद्धा-ज्ञानमें लेता है उसके कर्मोंका नाश होता है और सिद्धपद प्रगट होता है।

जिसप्रकार सिद्ध भगवान राग नहीं करते वैसे ही

आत्माके स्वभावमें राग करना नहीं है, पूर्ण ज्ञान एवं आनन्दसे परिपूर्ण स्वभावको लक्षगत करते हुये मोक्षमार्ग प्रगट होता है यही सिद्ध भगवानकी भक्तिका फल है। ऐसा शुद्ध लक्ष करे उसने सिद्धकी सच्ची स्तुति की। जिसने सिद्धको आदर्शरूप स्वीकार किया (जो सिद्धको नत हुआ) उसने अपना वह स्वभाव लक्षमें लिया, उपदेशका शुद्धसार उसने जान लिया। सिद्ध भगवान जिस शुद्धोपयोगसे मुक्त हुये हैं वही शुद्धोपयोग मोक्षके इच्छुकोंको प्राप्त करना चाहिये, यही सम्यक् उपदेश है। शुद्धोपयोगसे मोक्ष होना कहे वही सच्चा उपदेश है, रागादिसे मोक्ष होना कहे वह सच्चा उपदेश नहीं है किन्तु विपरीत उपदेश है।

❀ मिथ्यादृष्टि अनगारकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि गृहस्थ भला है ❀

प्रगटमें त्यागी हो जाय –इसप्रकारके शुभ परिणाम भी होते हैं, किन्तु भीतर तत्वकी विपरीत बुद्धि नहीं छोड़ी हो, रागसे धर्म मानता हो, तो ऐसी सच्ची दृष्टिके बिना बाह्य-त्यागका धर्ममें कोई मूल्य नहीं, इसकी अपेक्षा सच्ची तत्व-दृष्टि वाला गृहस्थ भला है, वह गृहस्थ सच्चे मोक्षमार्गको तो जानता है। श्री समंतभद्र स्वामीने रत्नकरंड श्रावका-चारमें कहा है कि—

बारहवाँ प्रवचन

[वीर सं. २४८९ भाद्रपद कृष्णा १३]

❀

मोक्षार्थी जीव शुद्धोपयोगरूप मोक्षपंथकी ही भावना करता है

सिद्धभगवानकी परमार्थ भक्तिका फल यह है कि उनके जैसा निजस्वरूपका लक्ष करके अपनेमें परमानन्दरूप शुद्धोपयोग प्रगट हो। सिद्धभगवान कैसे हैं? श्री तारणस्वामी कहते हैं—

दर्शन्ति सव्र दृश्यं दर्शायन्ति सुद्ध विमल मलमुक्कं।
अनुमोयं ज्ञानसहावं उवएसं विमल कम्म गलियं च॥
(उपदेश शुद्धसार : ४२७)

सिद्धभगवान सभी द्रश्याद्रश्य पदार्थोंके देखनेवाले हैं, और मलिनता रहित शुद्ध निर्मल ज्ञानस्वभावके दिखानेवाले हैं। ऐसा ज्ञानस्वभाव ही अनुमोदन करने योग्य है। हे जीव! तेरा भी ऐसा सर्वदर्शी-सर्वज्ञ स्वभाव है उसको तू दृष्टिमें ले। जैसे सिद्धप्रभु किसीके कर्ता नहीं उसी प्रकार तेरा आत्मा

भी किसीका कर्ता नहीं है। ऐसे निर्मल आत्माका लक्ष तू सिद्धके पाससे ग्रहण कर। सिद्धको देखकर तेरे अपने ऐसे स्वभावको अपनेमें देख ले। "सिद्धभगवानकी भक्तिका यही फल लेना चाहिये कि हम परमानन्दमय शुद्धोपयोगमें रमण करें, जिससे हमारे कर्म गलें"।

मोक्षमार्गी सन्तकी दशा...और मोक्षार्थीकी भावना

इच्छंति मुक्त पंथं इच्छायारेन शुद्ध पंथ दर्शन्ति ।
क्षिपिउन तिविह कम्मं क्षिपिनक सहकार कम्मविलयंति ॥
(उपदेश शुद्धसार : ४९८)

मोक्षमार्गकी इच्छा करनेवाले भव्य जीवोंको क्या करना चहिये? शुद्धोपयोगको ही मोक्षमार्ग जानकर उस मार्ग पर चलना चाहिये। मोक्षमार्ग कैसा होता है और सच्चे उपदेश-का सार कैसा होता है वह यहां बताया है। प्रथम तो भव्य जीवको मोक्षकी भावना होती है, मोक्ष अर्थात् आत्माकी शुद्धता, उसको ही वह चाहता है, उसके अतिरिक्त अन्य बाहरकी कोई अभिलाषा या भावना उसको नहीं, मोक्षसे विरुद्ध ऐसे रागादि बंधभावकी इच्छा उसको नहीं, 'मात्र मोक्ष अभिलाष है'-ऐसा मोक्षका इच्छुक भव्य जीव, उसको अनुकूल मोक्षमार्ग सिद्धभगवान दिखा रहे हैं, क्या दिखाते हैं? कि शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग है—इसप्रकार अपने शुद्ध-

स्वरूपसे वही दर्शा रहे हैं। ध्यानस्थ जैन मुनि स्वयं ही साक्षात् मोक्षमार्गकी संज्ञा हैं, उन्हें देखकर भव्य जीव पहिचान लेता है कि मोक्षमार्ग कैसा होता है! अहा, जैन-मुनियोंकी दशा तो अचिंत्य है, जो कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको सेवते हैं उन्हें तो मोक्षकी सच्ची भावना ही नहीं, उन्हें मोक्षमार्ग होता नहीं। सर्वज्ञदेव तो अतीन्द्रिय आनंदरूप हुये हैं, ऐसे देवको जो नहीं पहचानता, श्रद्धान नहीं करता, उसकी श्रद्धा तो अभव्यकी भांति मिथ्या है, उसको मोक्षाभिलापी नहीं कहते, उसके अंतरमें तो रागकी और पुण्य-विपयोंकी इच्छा है, अर्थात् उसे संसारकी ही इच्छा है, मोक्षकी इच्छा नहीं। पुण्यमें अथवा पुण्यके फलमें सच्चा सुख नहीं, अतीन्द्रिय स्वभावी आत्मा ही सुखस्वरूप है-ऐसा जानकर उस अतीन्द्रिय सुखकी जिसको भावना है वही मोक्षाभिलाषी है और ऐसे मोक्षाभिलापीको शुद्धोपयोग ही मोक्षका उपाय है। 'जो मोक्षमार्ग पर चलना चाहते हैं उनका कर्तव्य हैं कि शुद्धोपयोग पर चलें, इससे कर्म-क्षय होगा'

शुद्धताकी भावनावाला जीव कुदेवको नहीं भजता

जिनको शुद्धभावका ज्ञान नहीं, जो सदा रागी-द्वेपी-क्रोधी रहते हैं, ऐसे कुदेवोंको पूजना मिथ्यात्व है। आर्त-रौद्र-ध्यानमें आरूढ़ ऐसे जीवोंकी सेवा-पूजा तो नरक गमन-

का कारण है। श्री तारणस्वामी कहते हैं कि—

कुदेवं ये हि पूजन्ते वन्दना भक्ति तत्पराः ।
ते नरा दुःख सह्यन्ते संसारे दुःख भीरुहे ॥
(श्रावकाचार-५६)

कुदेवोंके पूजन-वंदन-भक्तिमें जो तत्पर हैं वे जीव भयंकर दुःखोंसे भरे संसारमें बहुत दुःखी होते हैं। अरे, जैन कुलमें जन्म लेकर तुझे अपने सर्वज्ञ-वीतरागदेवकी पहिचान भी न मिली तो उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्ग तू कैसे साध सकेगा? यहाँ तो कहा है कि भव्य जीव मोक्षका अभिलाषी है, उसको स्वयं रागकी भावना नहीं, अतएव रागी कुदेवोंको वह भजता नहीं। उसको मोक्षकी अर्थात् पूर्ण शुद्धताकी (-मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, उसकी) भावना है, इसलिये जिन्होंने शुद्धताको प्राप्त किया है ऐसे देव-गुरुको ही वह पूजता है, रागसे धर्म माननेवाले कुदेव-कुगुरुको वह नहीं मानता। देखो, यह सच्चा निर्णय करना मुमुक्षुका कर्तव्य है, अपने ज्ञानसे वह सच्चे-झूठेका निर्णय करता है।

केवली भगवानका ज्ञान एवं आनन्द इन्द्रियातीत है, विषयातीत है,—ऐसे ज्ञान-आनन्दस्वभावी आत्माको जो नहीं मानता वह मोक्षसे दूर है, उसको स्वभावकी रुचि नहीं किन्तु राग और बन्धकी रुचि है जिसप्रकार वीतरागदेवको भूलकर कुदेवको (रागी देवको) पूजे तो उसकी श्रद्धामें

अत्यंत विपरीतता है, उसीप्रकार वीतराग स्वभावको भूलकर जो रागका आदर करे उसकी श्रद्धा भी विपरीत है। अरे, जिनमन्दिरमें वीतराग भगवानकी मान्यताको एक ओर रखकर क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि कुदेवोंको पूजने लग जाय तो उसकी मान्यता वीतराग भगवानसे विरुद्ध है, मन्दिरमें तो वीतराग भगवानकी मान्यता है। जिनेन्द्र देवका भक्त सर्वज्ञ-वीतराग-जिनदेवके अतिरिक्त अन्यको पूजता नहीं है। पूर्णानन्दी प्रभु आत्मा वीतराग स्वरूपी है, उसको दर्शानेवाले वीतरागीदेव-गुरु-शास्त्रसे विरुद्ध जो माने वह मोक्षके हेतु अयोग्य है। हे आत्मन्! मोक्षका पंथ दिखानेवाले वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रको तू नहीं जानता और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रको मानता है तो तेरी रुचि मोक्षमार्गमें नहीं किन्तु बंधमार्गमें है। मोक्षके पंथकी भावनावाले भव्य मुमुक्षुके अन्तरंगमें वीतराग स्वभाव और बाह्यमें उसके निमित्त, इनके अतिरिक्त अन्यका आदर नहीं होता, मोक्षमार्गसे प्रतिकूल मार्गका आदर नहीं करते, वे सिद्धभगवानको आदर्शरूप रखते हुये मोक्षमार्गका सेवन करते हैं। मोक्षमार्ग कैसा है? शुद्धोपयोगरूप है।

मोक्षमार्गके व्यापारीको क्या करना चाहिये?

मुमुक्षु अथवा मोक्षमार्गके व्यापारीको उसके आत्माके मोक्षका यथार्थ मार्ग क्या है-यह समझना चाहिये, और उस

संबंधमें जितने प्रकारकी भूलें हों उन सबको सत्-समागम द्वारा समझकर मिटाना चाहिये। जिसप्रकार व्यापारी अपने व्यापारके समस्त मालकी कीमत याद रखता है, उसमें भूल नहीं करता, उसीप्रकार जिसको मोक्षमार्गका व्यापार करना है उसको तत्सम्बन्धी सातों तत्त्वोंका मूल्य (उनका स्वरूप) जैसा है वैसा जानना चाहिये। उनके जाने विना क्या भाव लेना व क्या भाव छोड़ना इसका ज्ञान नहीं हो सकता और मोक्षमार्गका साधन नहीं हो सकता। मोक्षार्थी जीव इच्छंति मुक्ति पथं.... .अर्थात् शुद्धोपयोगरूप निश्चय मोक्षमार्गकी इच्छा करता है, और रागादि व्यवहार जोकि मोक्षमार्ग नहीं है उसकी वह इच्छा नहीं करता।

※ मोक्षार्थी जीवको स्वाश्रयका उपदेश अनुकूल है ※

भगवान शुद्ध पंथ दिखाते हैं कि हे जीवो! हमने ऐसी शुद्ध पर्याय अंतरस्वभावके आश्रयसे प्रगट की है, तुम भी अन्तरस्वभावमें उपयोग रखकर ऐसी शुद्धता प्रगट करो, वही शुद्ध मोक्षपंथ है। भगवानका ऐसा उपदेश ही मुमुक्षुको अनुकूल है, अन्तरस्वभावके आश्रयका 'उपदेश ही मोक्षार्थीको अनुकूल है, वह मोक्षार्थी आत्माकी कामना करता है और भगवान भी यही उपदेश देते हैं। इस भांति भगवानका उपदेश भव्य जीवको अनुकूल है। कायरको वह

प्रतिकूल है तथापि मोक्षार्थी तो उसे समझकर हर्षित हो जाता है और उसकी परिणति अन्तर्मुख हो जाती है अतः उसको वह अनुकूल है।

वचनामृत वीतरागनां परम शांत रसमूल,
औषध जे भव रोगनां कायरने प्रतिकूल।
(श्रीमद् राजचन्द्र)

❊ भावनाका मंथन ❊

देखो, यह तो भावनाका मन्थन है। जिसकी अपनेको रुचि हो उसकी भावना वारंवार उठती है। यहां आत्माकी रुचिसे वारंवार उसकी भावना उठती है। अन्तरमें रुचि और भावना पुष्ट करते हुये शुद्ध आनन्दमय आत्माका अनुभव करना मोक्षमार्ग है। पुण्य-पापमें उपयोग जुड़ना अशुद्ध है। वह मोक्षमार्ग नहीं, उससे छूटकर शुद्धस्वरूपमें जो उपयोग जुड़े वही मोक्षका कारण है। भगवानने ऐसा आदर्श मार्ग दिखाया है उसका पहले निर्णय करना चाहिये और उसका मन्थन करना चाहिये। ऐसे शुद्धभावसे सर्व कर्मोंका क्षय होकर मोक्षदशा प्रगट होती है। अतएव जो मोक्षके मार्ग पर चलना चाहते हों उन्हें शुद्धोपयोगका मार्ग लेना चाहिये।

चिदानन्दस्वभावमें उपयोग जुड़े तभी सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन हो जानेके पश्चात् उपयोग भले ही अन्यत्र हो जाये किन्तु सम्यग्दर्शन प्रगट होते समय तो उपयोग 'स्व' में लगा हुआ होता है, अतः शुद्धोपयोग होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन विना अज्ञानपूर्वक शुभ व्रत पालते हुये भी वह जीव अव्रती जैनपन भी नहीं पा सकता। वहाँ श्रावक या मुनिपनेकी तो बात ही क्या? देखो, इसमें किसीकी निन्दा नहीं, किन्तु जीवोंके हित हेतु सत्य वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन है। सत्यको सत्य तथा असत्यको असत्य बताना इसमें कोई निन्दा नहीं, तथापि सत्य-असत्यको जानकर अपना हित करनेकी बात है। सत्य क्या और असत्य क्या, उसको पहिचान जो न करे वह अपना हित किसप्रकार साध सकेगा? सत्य-असत्यके निर्णय विना किस ओर जायगा, और कहाँसे वापिस फिरेगा? अतएव सत्य-असत्यका यथार्थ निर्णय सम्यग्दर्शनका कारण है।

सम्यग्दृष्टिका शुद्ध परिणाम

सम्यग्दृष्टि अव्रती हो तो भी वह चिदानन्द स्वभावकी ही रुचिवाला है, रागसे और संसारसे वह उदासीन है। श्रद्धाका बल ही कुछ ऐसा है कि आत्माको रागसे पृथक् ही पृथक् रखता है।

और भी श्री तारणस्वामी गाथा ३४ में कहते हैं कि—शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक जीव शुद्ध तत्त्वका प्रकाशक है, शुद्धस्वभावकी सन्मुखता उसका परिणाम है, और मिथ्या-दृष्टिका परिणाम शुद्ध स्वभावसे विमुख है। इसप्रकार सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी इन दोनोंके परिणामोंमें बड़ा अन्तर है। सम्यक्त्व श्रद्धागुणका शुद्ध परिणाम है। सिद्धभगवानके क्षायिक सम्यक्त्वादि आठ मुख्य 'गुण' कहे हैं, वही वास्तवमें गुणोंके शुद्ध परिणाम हैं। गुण जैसा ही निर्मल परिणाम हो उसको ही गुण कहा है, रागादि दोषके अभावकी अपेक्षासे उसको गुण कहा है, किन्तु है तो वह पर्याय। द्रव्य-गुण-पर्यायका यथार्थ ज्ञान यह तो जैनधर्मकी मूल वस्तु है, इसे अवश्य जानना चाहिये। मिथ्यात्व अशुद्ध परिणाम है और सम्यक्त्व शुद्ध परिणाम है।

सम्यक् देव-गुरुके भक्त होकर सम्यक्धर्मका आचरण करो

जगतमें अनंतानंत जीव हैं, एक एक जीवमें अनंत गुण हैं, एक एक गुण अनन्त पर्यायरूप परिणमता है, आत्माका ऐसा द्रव्य-गुण-पर्यायका यथार्थ स्वरूप सम्यग्दृष्टि प्रतीतमें लेता है। आत्माका ऐसा यथार्थ स्वरूप जिनेन्द्र सर्वज्ञदेवके अतिरिक्त अन्य किसीके मतमें नहीं है और जिनेन्द्रके भक्त (सम्यग्दृष्टि) के अतिरिक्त अन्य उसको यथार्थ प्रतीत कर नहीं सकते। और ऐसे आत्माकी प्रतीतके बिना कभी

धर्म होता नहीं है। इससे श्री तारणस्वामी २५वीं गाथामें कहते हैं कि 'सम्यक् देव-गुरु-भक्त सम्यक् धर्म समाचर' -सच्चे देव-गुरुकी भक्ति पूर्वक, उनके द्वारा कथित सम्यक् धर्मका सम्यक् रीतिसे आचरण करो। इसप्रकार सम्यक्त्वका अनुभव करके मिथ्यात्वसे मुक्ति पाओ। देखो, वीतरागी देव-गुरुकी भक्ति भी सम्यग्दृष्टिको ही सच्ची होती है।

सिद्ध भगवान शुद्ध आत्मस्वरूप दिखा रहे हैं

सिद्धभगवान शुद्ध आत्मस्वरूप ही दिखा रहे हैं-यह बात 'उपदेश शुद्धसार' में चल रही है। उसमें ४९९ वीं गाथामें भी तारणस्वामी कहते हैं कि—

चेतन्ति चित्त सुद्धं सुद्धं स सहाव चेत उवएसं।
रुचितं विमल सहावं रुचियन्तो ज्ञान निम्मलं विमलं॥

सिद्ध भगवान शुद्ध आत्माका ही चिंतन करते हैं— उसका ही अनुभव करते हैं, वे ऐसा दर्शाते हैं कि हे जीवो! तुम भी शुद्ध आत्मस्वभाव को ऐसे ही अनुभव करो, उसकी रुचि करो, उसकी रुचिसे निर्मल-वीतराग-निरावरण ज्ञान खिलता है। आत्म-अनुभव करनेसे हम परमात्मा हुये और तुम भी ऐसा अनुभव करो— ऐसे आदर्शपनसे सिद्ध-भगवान मोक्षमार्ग दिखा रहे हैं। ऐसा अनुभव ही भगवानके उपदेशका सार है। अनन्तगुणोंके पिंडरूप अपना शुद्ध आत्मा

उसमें अन्तमुर्ख होकर उसके उप=समीप वास करना सच्चा उपवास है, इसके अतिरिक्त शरीरकी बाह्य-क्रिया आत्माकी नहीं, वह तो भिन्न है, उसमें आत्माका वास नहीं। 'उपवास' शरीरमें नहीं रहता उपवास तो आत्मामें रहता है। 'उपवास' क्या है इसकी लोगोंको जानकारी नहीं और भ्रमसे मान रहे हैं कि हमने उपवास किया।

* सामायिक तो बहुत ऊँची भूमिका है—
सम्यक्त्व उसका मूल है *

जीवादि छह द्रव्य कैसे हैं? उनमें पांच अस्तिकाय कैसे हैं? जीव-अजीव आदि सात तत्त्वोंका स्वरूप क्या है? नौ पदार्थ, उनमें जीव और अजीव यह दो मूल द्रव्य और बाकीकी पर्यायें हैं, उनमें बंध-मोक्षका कारण वह किस-प्रकार है? यह सभी जानकर सच्ची श्रद्धा करना चाहिये। ऐसे तत्वार्थश्रद्धानमें शुद्धात्मश्रद्धान सम्मिलित है। प्रथम ऐसा सम्यग्दर्शन कहा है उसके बाद ही सामायिक आदि होती है। सामायिक तो बहुत ऊँची भूमिका है, पर उसका पाया सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना अज्ञानपनेमें तो सच्चा व्यवहारधर्म भी नहीं होता। अपने निर्मल स्वभावकी रुचि सच्ची श्रद्धा है, और उस रुचिके बलसे धर्मात्माको ज्ञानादि-की निर्मलता होकर केवलज्ञान प्रगट होता है।

❀ सम्यक्त्व तीर्थ है ❀

श्रावकाचार गाथा २३५-२३६ में रत्नत्रयके स्वरूपको बताते हुए कहते हैं कि नित्य प्रकाशमान ऐसे ध्रुव ज्ञानमय तत्त्वका दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीर्थ है, अर्थात् कि वे भव-सागरसे तारनेवाला जहाज हैं। सम्यग्दर्शन भी भवसे तारने-वाला तीर्थ है। सभी गुणोंसे सम्पूर्ण ऐसे अपने ज्ञानमूर्ति आत्माका दर्शन सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शनादि कोई बाहरकी भिन्न वस्तु नहीं किन्तु शुद्ध आतमगुण ही है। राग कोई आतमगुण नहीं, वह भवसागरसे तारनेका जहाज भी नहीं, वह तो उल्टा बोझरूप है। रागको तोड़कर वीतराग होकर भवसागर तरा जाता है। रागसे पूर्ण रागी भवसागर-से तरता नहीं है।

❀ बिना रागका देव और बिना रागका मार्ग ❀

मोक्षका ऐसा वीतरागमार्ग बतानेवाले तारणहार वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रके प्रति पूजा-भक्तिका शुभराग यद्यपि धर्मीको हो, परन्तु धर्मी उस रागको मोक्षमार्ग नहीं मानता। सर्वगुण-संपन्न संपूर्ण अपने ज्ञानमूर्ति आत्माका दर्शन-चिंतन-निर्विकल्प अनुभवन यह मोक्षमार्ग है, उसमें राग नहीं। इस भाँति मोक्षका मार्ग रागरहित है और इस मार्गके बताने-वाले सर्वज्ञदेव भी रागरहित हैं।

जीवकी मिथ्यात्वादि अशुद्धपर्याय सो संसार, सम्यक्त्व-पूर्वक आंशिक शुद्धपर्याय वह मोक्षमार्ग है और पूर्ण शुद्ध-पर्याय वह मोक्ष है। ऐसा संसार, मोक्षमार्ग और मोक्ष, तीनों ही जीवकी पर्यायमें हैं, कहीं बाहर नहीं। विकारभाव अवगुण है, विकारका नाश होकर निर्दोष अविकारभाव प्रगटा उसको गुण कहा है, निर्मल पर्यायको गुण कहा है, क्योंकि जैसा गुणस्वभाव शुद्ध है वैसी शुद्ध पर्याय हुई। ऐसी रागरहित शुद्धपर्याय मोक्षमार्ग है।

सम्यक्त्वकी शुद्धिके बिना चारित्रकी शुद्धि नहीं होती

गाथा २०८ में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि—

यस्य सम्यक्त्वहीनस्य उग्रं तव-व्रत-संजमं ।
सर्वा क्रिया अकार्या च मूल विना वृक्षं यथा ॥

जो जीव सम्यक्त्वहीन है उसके उग्र व्रत-तप-संयम आदि सभी क्रियायें व्यर्थ हैं-निष्फल हैं, जिसप्रकार विना मूलके वृक्ष नहीं होता उसीप्रकार विना सम्यक्त्वके धर्म नहीं होता, मोक्षमार्गरूपी वृक्षका मूल सम्यग्दर्शन है। 'दंसण मूलो धम्मो' भगवानने जो धर्मोपदेश दिया उसका मूल सम्यग्दर्शन है, यह बात 'अष्टप्राभृत' में आचार्य कुन्दकुन्द-देवने कही है। सम्यग्दर्शनके विना सभी मोक्षके हेतु व्यर्थ हैं। जिसके हृदयमें सम्यक्त्वरूपी मूल विद्यमान है उसके सम्यक्त्व-मूलमेंसे व्रतरूपी शाखा फूटती है, और उसके ही

अनंतगुणोंकी शुद्धता प्रगट होती है, शुद्ध आत्माकी रुचिरूप सम्यग्दर्शन सर्व कल्याणका मूल है, उसके बिना कल्याणका पंथ मिलता नहीं। जिसप्रकार मूल विना वृक्ष नहीं उसी प्रकार सम्यक्त्व विना धर्म नहीं। मुनिराज समन्तभद्रस्वामी 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में कहते हैं कि—'इस जीवको तीनकाल और तीनलोकमें सम्यक्त्वके समान कोई श्रेय नहीं है और मिथ्यात्वके समान इस जगतमें कोई अश्रेय नहीं है।'

श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—वीतरागभावरूप चारित्र यही साक्षात् धर्म है, और सम्यग्दर्शन उसका मूल है-(चारित्तं खलु धम्मो, और दंसण मूलो धम्मो) अर्थात् सम्यग्दर्शन विना चारित्र नहीं होना और चारित्र विना मोक्ष नहीं होता। इसप्रकार जिसके हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी मूल है उसको शुद्धताकी अनन्तानन्त शाखाये फूटती हैं और मोक्षरूपी फल पकता है। सम्यक्त्व रहित क्रियायें तो मिथ्यात्वके रहनेका जाल है,—क्योंकि उसमें धर्म मानकर जीव मिथ्यात्वको पोषता है और संसारमें भ्रमण करता है। अनेक प्रकारके शास्त्रोंकी पंडिताई भी सम्यक्त्व विना मोक्ष-का साधन नहीं होती। मोक्षका मूल-साधन सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व होते ही जीव नियमसे मोक्षगामी होता है। अतएव मुमुक्षु जीवोंका सबसे पहला कर्तव्य सत्समागमसे सम्यक्त्व प्राप्त करना है।

तेरहवाँ प्रवचन

[वीर सं. २४८९ भाद्रपद कृष्णा १४]

जिनोपदेशका सार–शुद्धात्मध्यान–उसके द्वारा ही मोक्ष सधता है

मोक्षार्थी जीवको शुद्धताकी धुन है, अर्थात् शुद्धात्माकी भावनाका बारंबार अभ्यास करता है। शास्त्रोंमें भी उसके ही उपदेशकी प्रधानता है। 'उपदेश शुद्धसार' द्वारा उस शुद्धताकी भावना करते हुए श्री तारणस्वामी गाथा ५०० में कहते हैं कि :—

उत्तं सुद्ध सुद्धं उत्तायन्तु विमल कम्म विलयं च ।
परसे परम सुभावं परषंतो धुव सुद्ध कम्म गलियं च ॥

सिद्ध भगवान जैसा अपना शुद्ध स्वभाव है, उस परम स्वभावको परखते अथवा स्पर्श करते, देखते, अनुभव करते कर्म गल जाते हैं और ध्रुव सिद्धपद प्राप्त होता है। ऐसे परम स्वभावकी भावना करने योग्य है।

स्वभावकी भावना द्वारा सिद्धपदकी साधना होती है

जीवोंने अज्ञानदशामें तो अनादिसे परभावोंका ही रटन-चिंतन किया है और दुखी हुए हैं, उसके बदले अब शुद्धात्माका स्वरूप क्या है यह जानकर उसका रटन-चिंतन और अनुभव करने योग्य है। धर्मी जीव अपना स्वरूप कैसा विचारता है यह पंडित बनारसीदासजी कहते हैं कि—

'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो'

ऐसे स्वभावकी भावनासे ही सिद्ध गति प्राप्त होती है। परम स्वभावकी भावना निश्चय है, वह मोक्षमार्ग है। ऐसे स्वभावका जिसको भान नहीं वह व्यवहारमूढ़ है। समयसार गाथा ४१२ में कहते हैं कि हे भव्य! तू परमार्थ मोक्षमार्गमें अपने आत्माको लगा।

तुं स्थाप निजने मोक्ष पंथे, ध्या अनुभव तेहने,
तेमां ज नित्य विहार कर, नहि विहर पर द्रव्यो विषे।

निश्चय मोक्षमार्गकी जिसको जानकारी नहीं, परमार्थ स्वरूपको जो समझता नहीं और व्यवहारमें ही मोहित होकर उसे मोक्षमार्ग मानता है उसको आचार्यदेवने व्यवहारमूढ़ और निश्चयमार्गमें अनारूढ़ कहा है। अरे भाई! भगवानने व्यवहारके आश्रयसे मोक्षमार्गकी साधना नहीं की, भगवानने तो परमार्थ स्वभावके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रसे ही मोक्षमार्गकी

साधना की है और ऐसे मार्गका ही उपदेश दिया है; तो फिर तू दूसरा मोक्षमार्ग कहांसे लाया ?

सिद्ध और साधक

सिद्ध भगवान अपने उत्कृष्ट आनंदस्वभावको देखनेमें लीन हैं, मुमुक्षु साधक भी अपने ऐसे ही स्वभावको देखता है, उसे ही आदरणीय मानता है। सिद्धभगवान जिस मार्ग पर चले हैं उसी मार्ग पर चलना यही मुमुक्षुका कर्तव्य है। अतएव शुद्धोपयोगरूप मार्ग ही मुमुक्षुके लिये उपादेय है। श्रावकके शुभरागको उपचारसे ही धर्म कहा है, अर्थात् उस भूमिकामें वैसा शुभराग होता है उसका ज्ञान कराया है, किन्तु मोक्षहेतुरूप धर्म तो उस समयका शुद्ध-अरागी भाव ही है। सिद्धसमान अपने शुद्ध स्वभावको देखनेसे और अनुभव करनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है। रागवाले आत्माका अनुभव करनेसे कर्मोंका क्षय नहीं होता।

* जैनमार्ग *

इस उपदेश शुद्धसारके मंगलाचरणमें श्री तारणस्वामीने श्री जिनेन्द्र भगवन्तोंको नमस्कार किया है और उन जिनेन्द्र-देवों द्वारा कथित मार्ग ही तीन लोकमें श्रेष्ठ है ऐसा बताया है। जैनमार्गकी किसी अन्य मार्गके साथ कोई तुलना करे

तो उसे जैनमार्गकी जानकारी नहीं; श्री तारणस्वामीने क्या कहा उसकी भी उसे जानकारी नहीं। यहाँ तो शुद्ध जैनमार्गकी बात है, उसमें कोई गड़बड़ी नहीं चल सकती।

ज्ञान-आनन्दमय शुद्धात्मा ऐसे परम देवाधिदेव अरिहन्त परमात्माको नमस्कार करना, उनकी भक्ति-पूजा-विनयका भाव धर्मीको आता है, उसमें शुभ विकल्प है और उसी समय वह अरिहन्त जैसा अपना शुद्ध आत्मा है उसे भी धर्मी सम्यक्-श्रद्धासे अन्तरमें देखता है। निश्चयसे अपना शुद्ध आत्मा ही आराध्यदेव है, उसको भूलकर केवल बाह्य देवको भजे तो उसमें शुभराग है, किन्तु उस रागके द्वारा भवसे पार नहीं होते। अपने शुद्ध आत्माकी आराधनाके द्वारा ही भवसे पार होते हैं और वही जैनमार्ग है।

❀ मोक्षमार्गके शुद्ध उपदेशदाता अरिहन्त ❀

जगतमें तीर्थंकर अनादि प्रवाहसे होते आये हैं और ऐसा शुद्ध जैनमार्ग अथवा मोक्षमार्ग दिखाते आये हैं। महावीर, सीमन्धर, शांतिनाथ, नेमिनाथ, सूर्यकीर्ति—ऐसे किसी एक खास तीर्थंकरको लक्षमें लें तो वह सादि हैं, किन्तु समुच्चय तीर्थंकर और सिद्ध अनादिसे होते आये हैं और उनके द्वारा कथित मार्ग भी अनादिसे चलता रहा है। केवलज्ञान होनेके पश्चात अरिहन्त दशामें वाणीके साथ

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है, सिद्ध दशा होने पर वाणीके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता। पूर्ण आनन्दके अनुभवसहित और सर्वज्ञता द्वारा लोकालोकके समस्त पदार्थोंके ज्ञाता अरिहन्त भगवानको वाणीका योग सर्वथा नहीं होता तो उनके द्वारा जाने गये तत्त्वोंको जगत किसप्रकार जानता? सर्वज्ञदेवने संसार-भ्रमणसे छुड़ानेवाला निर्दोष उपदेश दिया; जैसा शुद्धस्वरूप अपने साक्षात् केवलज्ञानमें देखा वैसा शुद्ध-स्वरूप जगतको दिखाया है, अस्तु भगवानका उपदेश शुद्ध है।

चतुर्गतिके कारणरूप जो मिथ्यात्वादि उदयभाव हैं उनसे छूटनेका भगवानका उपदेश है। जिससे संसार-भ्रमण मिटे और मोक्ष मिले ऐसा शुद्धात्म-अनुभव करनेका भगवानका उपदेश है। भगवानकी वाणीमें भगवान होनेका उपदेश है। 'मैं भगवान ..तू भगवान, मैं सिद्ध तू सिद्ध'। भगवान स्वयं भव रहित हैं और भवरहित होनेके पुरुषार्थका भगवानने उपदेश किया है। जिससे भव होता हो वह भगवानका उपदेश नहीं। भवका अभाव जिससे हो वही भगवानका उपदेश है। भगवानकी वाणी 'परसे' पृथक्ता कराती है और स्वभाव-सन्मुखता कराती हुई भवसे छुड़ाकर परम आनन्दको प्राप्त कराती है।

'वचनामृत वीतरागीके परम शांत रसमूल,
औषधि यह भव रोगकी, कायरको प्रतिकूल।'

पुण्य और पाप तो अनादिसे जीव करता आया है, यह कोई नई बात नहीं, और जो अब भी इसका ही उपदेश देवे तो उस उपदेशमें नवीनता क्या रही? पुण्य-पाप करना तो जीवको विना उपदेशके भी आता है। इससे परे आत्मा क्या वस्तु है-उसका उपदेश सच्चे मोक्षमार्गका उपदेश है। विना रागका मोक्षमार्ग भगवानने बताया है। शुद्ध आत्माका अनुभव ही भगवानके उपदेशका सार है और वही मुक्तिका कारण है, ऐसा जिनोपदेश त्रिलोकका प्रदीप है। भगवान-कथित मार्ग ही तीनलोकमें श्रेष्ठ मार्ग है। सम्यग्दृष्टि जो उपदेश देते हैं वह भी जिनोपदेशके अनुसार ही है। मिथ्यात्व-मोहको जीतनेकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि भी 'जिन' है। मुनि और गणधर 'जिनवर' तथा अरिहन्त भगवान जिनवरोंमें श्रेष्ठ 'जिनवरेन्द्र' हैं। उनका उपदेश राग-द्वेष-मोहको जीतनेका है। बन्धमार्गसे छुड़ानेवाला और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला उपदेश जिनोपदेश है। भवसे तरने वाले भगवंतोंका उपदेश भवसे तारणहार है। मोहको जीतने वाले जिनोंका उपदेश मोहका नाशक है।

❀ बोलते-भगवान...और मूक-भगवान ❀

भगवानने उपदेशमें क्या कहा है? उसका यहां वर्णन चलता है। उपदेश शुद्धसारकी गाथा ५०१ में श्री तारण-स्वामी कहते हैं कि—

बोलयन्ति वयन जिनियं बोलन्तो शुद्ध कम्म विलयन्ति ।
धरयन्ति धम्म सुकं धरयन्तो सूक्ष्म कम्म खिपनं च ॥

श्री जिनेन्द्र भगवानने जो वचन कहे उसके वाच्यरूप शुद्धतत्त्वका ध्यान करनेसे कर्मोंका नाश होता है। भव्य जीव धर्म-शुक्ल ध्यानमें शुद्धात्माको धारण करते हैं और उसके सूक्ष्म ध्यान द्वारा कर्मोंका क्षय करते हैं।

कितने ही जीव ऐसे मूक-केवली होते हैं कि केवल-ज्ञान होनेके पश्चात् दिव्यध्वनिका योग उनको नहीं होता, अपने आत्माका काम तो पूरा कर लिया किन्तु ॐकार ध्वनि खिरे इस प्रकारका उदय उनको नहीं होता, परन्तु तीर्थंकर भगवन्तोंको तो दिव्यध्वनिका योग निश्चित ही होता है। इसके अतिरिक्त अन्य केवली भगवन्तों (भरतजी, रामचन्द्रजी आदि) को भी दिव्य वाणीका योग होता है और इच्छा बिना सहज ही वाणी खिरती है। केवली भगवान छद्मस्थकी भांति ओंठ-मुंह हिलाकर नहीं बोलते, किन्तु सम्पूर्ण शरीरसे, सर्वांग असंख्य प्रदेशोंसे मधुर दिव्यध्वनि निकलती है। इसप्रकार यहां 'बोलते-केवली' की बात कही है। इनकी ध्वनिकी मधुरताकी तो क्या बात ! और इनके जो वाच्यभाव हैं उनकी महिमाकी क्या बात !—जिस वाच्यको लक्षमें लेते ही सम्यग्दर्शन होता है और शुद्धआत्मा अनुभवमें आता है। भगवानकी ॐकार ध्वनि छूटती है और उसका वाच्यरूप

शुद्ध आत्मा है। भगवानकी वाणी ऐसा कहती है कि आत्मा शुद्धस्वभावी सर्वगुणसंपन्न है, उसको अनुभवमें लाओ।

ज्यां चेतन त्यां अनन्तगुण . .केवली बोले एम,
प्रगट अनुभव आत्मनो. .निर्मल करो सप्रेम....रे. .

चैतन्य प्रभु ! प्रभुता तमारी चैतन्य धाममां ..
अमृत वरस्या छे तारा आत्ममां...
(गुजराती)

❀ भगवानका उपदेश हमारे लिये है ❀

देखो, यह भगवानका उपदेश ! ऐसा स्वरूप समझनेवाले जीव हैं उनके लिये भगवानका उपदेश हुआ है। भव्य जीव कहते हैं कि भगवानका उपदेश हमारे लिये ही है, हमारे ऊपर कृपा करके भगवानने हमको शुद्धात्माका उपदेश दिया है। दिव्यध्वनिमें भगवान कहते हैं कि तुम पूर्ण आनन्दसे भरपूर शुद्ध आत्मा हो तुममें शक्तिरूपसे परमात्मपन भरा है। तुम्हारे अंतरके चैतन्यगर्भमें परमात्मा विराज रहे हैं। उनके ऊपर दृष्टि एकाग्र करो, उनकी सेवा-भक्तिसे परमात्मपन प्रगट होगा . शक्तिमें रमनेवाला परमात्मपन पर्यायमें भी खिल जायगा। तुम्हारी शक्तिकी एक टंकारमें केवलज्ञान लेनेकी सामर्थ्य है, ऐसा भगवानकी वाणीसे

प्रगट होता है। अहो, ऐसी वाणीका अनुशीलन अर्थात् वाणीके वाच्योंका मनन-चिंतन करनेसे भावश्रुतका अपूर्व आह्लाद अनुभवमें आता है। 'मैं भी परमात्मा हूँ' ऐसे चिंतनसे आनंदका अनुभव होता है।

जिनवाणीका सार : मोहका क्षय और शुद्धात्माकी प्राप्ति

अहो, परमात्मतत्त्वका ऐसा यथार्थ ज्ञान, यथार्थ उपदेश केवली प्रभुके वीतराग-मार्गके अतिरिक्त अन्य कहीं होता नहीं है, भगवानकी वाणी द्रव्य-गुण-पर्यायका यथार्थ ज्ञान कराती है, और उसके यथार्थ ज्ञान द्वारा मोहका नाश होता है एवं सिद्धपद प्रगट होता है। यह जिनवाणीका फल है। किन्तु अन्तरके लक्ष विना केवल शास्त्र पढ़ लिया जाय और उसके वाच्योंका विचार न करे तो उसको जिनवाणीका सार समझमें नहीं आ सकता और उसका सच्चा फल प्रगट नहीं होता। भगवानका उपदेश तो कर्मक्षयका ही कारण है।

अर्हन्त सौ कर्मो तणो करी नाश अे ज विधि वडे,
उपदेश पण अेम ज करी निर्वृत्त थया नमु तेमने।

(गुजराती)

शुद्धात्मामें दृष्टि एवं एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग द्वारा समस्त तीर्थंकरोंने कर्मोंका क्षय किया और उसके पश्चात् समवसरणमें श्रोतागणोंको ऐसा ही उपदेश दिया। जैसे

मार्गका स्वयं साधन किया वैसा ही मार्ग जगतको बताया। भगवान कहते हैं कि जैसा शुद्ध मैं हूँ वैसा ही शुद्ध तू है, अपने उपयोगको अन्तरमें ढालकर ऐसे शुद्धस्वभावको लक्षमें ले, अपनी पर्यायको शुद्धस्वभावमें जोड़ और परभावोंको छोड़। पर्यायको स्वभाव-सन्मुख करके एकताका अनुभव करे तो उसमें मोक्षमार्ग समा जाता है। भाई, तेरी मोक्ष-क्रीड़ा तेरी पर्यायमें ही समायी है। मोक्षके लिये अन्य कहीं खोजनेकी आवश्यकता नहीं। मोक्षहेतु अपनेमें ही स्वसन्मुख हो। ऐसा उपदेश भगवानका उपदेश है, और मोहका क्षय होकर शुद्धात्माकी प्राप्ति यह उसका फल है।

मोक्षका कारण ध्यान, शुद्धात्मा उसका ध्येय

आत्मा स्वयं ही ज्ञान-आनन्दसे भरपूर समुद्र है, उसको लक्षमें लेकर ध्यानमें धारण करो। अभी यहां पंचम-कालमें जीवोंको शुक्लध्यान नहीं होता किन्तु धर्मध्यान होता है, उसमें भी ऐसा ही शुद्ध आत्मा अनुभवमें आता है।

धर्मध्यान और शुक्लध्यान यह दोनों ध्यान आत्माकी अविकारी पर्यायें हैं। आत्मध्येयमें एकाग्र होनेसे ऐसा ध्यान प्रगट होता है, वहां विकल्प छूट जाता है। सच्चा धर्म-ध्यान कोई विकल्प नहीं, राग नहीं, वह तो चैतन्यमें एकाग्रता-रूप स्थिर उपयोग है। 'धर्म' अर्थात् शुद्धस्वभाव, उसमें एकाग्रतारूप ध्यान, वह धर्मध्यान है। ऐसे ध्यान द्वारा

सूक्ष्म कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। शरीर स्थूल स्कंध है उसमें आठों स्पर्श हैं, और कर्म सूक्ष्म स्कंध हैं, उनमें चार स्पर्श हैं। आत्मा अस्पर्शी अतीन्द्रिय परम सूक्ष्म चैतन्यस्वरूप है, उसके ध्यान द्वारा शुद्धता होनेसे अशुद्धता छूटती है, अशुद्धता छूटनेसे कर्मका सम्बन्ध छूट जाता है, और सर्व कर्मोंका सम्बन्ध छूटनेसे शरीरका भी सम्बन्ध छूटकर मोक्षदशा प्रगट होती है। इस भांति शुद्धात्माका ध्यान मोक्षका उपाय है। ध्यानका जो ध्येय है उसकी पहिचान बिना किसका ध्यान करोगे? परलक्षसे होनेवाला शुभ विकल्प तो राग और बन्धका कारण है, उस रागके द्वारा शुद्धात्मा ध्येय नहीं होता, अतः वह मोक्षका कारण नहीं है। मोक्ष शुद्धात्माके ध्यानसे ही होता है और वह ध्यान रागरहित है।

'ध्यान वडे अभ्यंतरे देखे जे अशरीर,
शरमजनक जन्मो टले, पीये न जननी क्षीर।'

※ ध्यानमें सर्वथा शून्यता नहीं,
किन्तु वह आनन्दसे परिपूर्ण है ※

शब्दका लक्ष छोड़कर शब्दातीत चैतन्यताके लक्षसे यथार्थ ज्ञान प्रगट होता है। शास्त्रके शब्दोंकी ओर देखा करें तो उसमें शुभराग है, पर जब उसके वाच्यरूप शुद्धात्माकी ओर उपयोग झुकता है तब विकल्प टूटता है और तभी ध्यान

होता है। 'ॐ' आदि शब्दका जाप किया करे उसमें शुभ-भाव है। परन्तु ऐसे जापके द्वारा कहीं सम्यग्दर्शनादि नहीं होते। उसके वाच्यको अनुभवमें ले तो ही सम्यग्दर्शनादि होते हैं। अमल अर्थात् मलरहित—विना रागका शुद्ध आत्मा सार है, वह परम है, उसके ध्यान द्वारा आत्मा जिनेन्द्र परमात्मा होता है। परका लक्ष छोड़कर स्वलक्षकी ओर झुके बिना कदाचित् भी सच्ची प्रतीति-ज्ञान-स्थिरता नहीं होती। बहुतसे लोग कहते हैं कि सब कुछ भूलकर बस शून्य हो जाना ध्यान है, किन्तु भीतर सम्पूर्ण, अनन्तगुणोंसे परिपूर्ण आनन्दकन्द परमात्मा शोभायमान है उसका तो भान नहीं, तो ध्यान किसका? ध्यानमें सर्वथा शून्यता नहीं किन्तु विभावोंके अभावकी अपेक्षासे शून्यता कही है। निजस्वभावसे भरपूर और परभावोंसे शून्य (रहित) ऐसे शुद्ध आत्मामें समा जाना ध्यान है और वह मोक्षमार्ग है। ध्यानमें अपने आपको भूला नहीं जाता किन्तु आत्मा स्वयं अपना साक्षात् अनुभव करता है। शून्य अर्थात् परभावसे रहित, और अपने स्वभावसे परिपूर्ण ऐसे आत्मस्वभावमें पर्यायको समा देना-लीन करना-अभेद करना मोक्षमार्ग है।

रागका स्थान बन्धमार्गमें है, मोक्षमार्गमें नहीं

निजस्वरूपमें स्थिरतारूप मोक्षमार्ग वीतराग है, उसमें रागका अभाव है। रागको वीतराग-मार्गमें स्थान नहीं,

उसका स्थान तो बन्धमार्गमें है। और वाणी तो पृथक् ही है। भगवानने वाणीका और रागके ध्यानका उपदेश नहीं दिया, शुद्धात्माके ही ध्यानका उपदेश दिया है। ऐसा उपदेश झेलकर भव्य जीवोंने उसका ध्यान किया और मोक्ष प्राप्त किया।

ज्ञानीके जो शुभ विकल्प हैं वे तो बन्धका कारण हैं, वे मोक्षके कारण नहीं; उस समय उसके जो रागरहित शुद्ध-ज्ञानदशा वर्तती है वही मोक्षका कारण है। निश्चयके साथ व्यवहार होता है, परन्तु मोक्षमार्ग व्यवहारके आश्रित नहीं। उस समय निश्चय स्वभावके आश्रयसे जितनी शुद्धता प्रगट हुई उतना ही मोक्षमार्ग है, वह तो वीतराग है। अहो अनन्तानन्त तीर्थंकरों द्वारा कथित और साधित यह वीतरागमार्ग है, जिसे कुन्दकुन्दादि वीतरागी आचार्य भगवन्तोंने स्वानुभव-पूर्वक प्रसिद्ध किया है, उससे विपरीत मार्ग मानना मिथ्यात्व है, उसमें तीर्थंकरोंका अनादर होता है।

विदेहक्षेत्र और सीमन्धरस्वामी—जीवंतस्वामी

अभी विदेहक्षेत्रमें भी तीर्थंकर भगवान ऐसा ही वीतराग-मार्ग प्रकाशित कर रहे हैं। वर्तमानमें लोग मानते हैं कि यह पृथ्वी इतनी ही नहीं परन्तु बहुत बड़ी है, इस भरत-क्षेत्रके अतिरिक्त महाविदेहक्षेत्र आदि अन्य भी बहुत क्षेत्र हैं। करोड़ों मनुष्य महाविदेहक्षेत्रमें बसते हैं, वहाँ केवलज्ञानके दिव्य तेजसे प्रकाशमान चैतन्यसूर्य ऐसे सीमन्धरादि भगवन्त

अपने स्वभावमें निमग्न विराज रहे हैं। करोड़ पूर्वकी उनकी आयु है। यहां जब (अरबों वर्ष पहले) बीसवें मुनिसुव्रत भगवान हुए थे उस समय विदेह क्षेत्रमें सीमन्धर भगवानने मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त किया था, वे तीर्थंकररूपमें अब भी वहां विचरते हैं और समवशरणमें धर्मोपदेश देते हैं, इन्द्र, गणधर और चक्रवर्ती वहां सुनने-समझनेको आते हैं और अभी अरबों वर्षों तक वह अरिहन्त पदमें रहेंगे, जब-यहां आगामी चौबीसीमें बारहवें तीर्थंकर होंगे तब वे मोक्ष प्राप्त करेंगे।

देखो, विदेहक्षेत्र है, तीर्थंकर हैं, समवसरण है, दिव्य-ध्वनि खिरती है, वहां अन्य शाश्वत जिनालय-मंदिर हैं। यह सब सत् है, और 'प्रत्यक्ष' हुआ है। सीमन्धर भगवानको अनन्त उपकारी ऐसा केवलज्ञान प्रगट हुआ है। भक्त कहते हैं कि प्रभो, आपकी वाणी तो उपकारी है और आपका केवलज्ञान भी अनन्त उपकारी है। भगवानको कोई भय या दोष नहीं, वे वीतराग हैं, ज्ञानमें रत हैं। ऐसे सीमन्धर भगवान विदेहक्षेत्रमें विराजते हैं। उनकी वाणी सुनने इस भरतक्षेत्रके महान आचार्य श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहा गये थे, उन भगवानकी वाणी साक्षात् सुनकर कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसारादि शास्त्रों द्वारा भरतक्षेत्रमें भगवानकी वाणीका घोष प्रसारित करते हुये मोक्षमार्ग प्रशस्त किया। सीमन्धर भगवान विदेहक्षेत्रके जीवन्तस्वामी है। वर्तमान तीर्थंकररूपमें

विराज रहे हैं, उनका महान उपकार है। बयाना (भरतपुर) में उनकी पांचसौ वर्षसे भी अधिक प्राचीन प्रतिमा है; (पूज्य श्री कानजी स्वामी संघ सहित वहां गये थे, उस प्रसंगके महत्त्वपूर्ण विवेचन हेतु देखो आत्मधर्म अंक २९४)। वर्तमान-की लौकिक भूगोलकी मान्यता जैसी ही दुनिया नहीं है, दुनिया तो बहुत बड़ी है। 'विद्यमान जिन उत्तं'—ऐसा कहकर श्री तारणस्वामीने भी विदेहक्षेत्र आदिका उल्लेख किया है। वहां सीमन्धर स्वामी करोड़ों-अरबों वर्षोंसे केवलज्ञानमें विराजे हैं और अभी अरबों वर्षों तक देह-सहित विचरेंगे। पश्चात देह-रहित सिद्ध हो जायेंगे। 'ममल पाहुड' में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि "जो अतीन्द्रिय आत्मामें रमण करते हैं वे ही वीतरागरूप रत्नत्रय-धर्ममें रमण करते हैं। भीतर आत्माकी शक्तिका प्रकाश होगया है, वे निर्मल होगये हैं। उनको आनन्दामृत-रसका स्वाद आ गया है। वे आत्माको प्रत्यक्ष देखते हुये मुक्तिपदमें स्वयं चले जाते हैं। जो हितकारी अनन्त ज्ञानका प्रकाश है उसमें रमण करते हुए अनन्त सहकारी गुण सदा प्रगट रहते हैं; उनके भय, शल्य व शंका सब विला गये हैं, वे अनन्त स्वभावके धारी अरिहन्त-जिन सिद्धभावको प्राप्त होजाते हैं। श्री अरिहन्तका स्वभाव अनन्तज्ञान व अनन्त-दर्शनस्वरूप है, वे अपने ज्ञानमें मग्न हैं, वे ही सूर्यसम प्रभावान हैं। जैसा वर्तमानमें विदेहक्षेत्रमें रमण करनेवाले

श्री सीमंधर आदि वीस तीर्थंकरोंने कहा है, उनकी वाणीके अनुसार ही वे सिद्धस्वभावमें लीन हैं।"

सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी व्यवहारश्रद्धामें भी कैसी दृढ़ता होती है!

देखो, यह सर्वज्ञ परमात्माका स्वरूप! ऐसी दशामें विराजमान परमात्मा ही सच्चे देव हैं। जिसको सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी पहिचान नहीं, आत्माका भान नहीं और मिथ्यात्वपोषक कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रका सेवन करता है वह जीव मिथ्याभावके सेवनसे कुगतिमें भ्रमता है। कुगुरुओं द्वारा बताया विरुद्ध मार्ग विश्वास करने योग्य नहीं, लोक-लाजसे, बड़प्पनकी आशासे, भयसे अथवा लालचसे अथवा पूर्वके परिचयके कारण भी, कुगुरुओं द्वारा बताया गया मार्ग सेवन करने योग्य नहीं। वीतराग सर्वज्ञदेवका भक्त वीतरागता-पोषक सच्चे देव-गुरु-शास्त्रके लिये अर्पण हो जाता है, उनसे विरुद्धको स्वप्नमें भी नहीं मानता। ऐसा निर्णय और ऐसी दृढ़ता व्यवहारश्रद्धामें समाती है। और परमार्थ-श्रद्धा (सम्यग्दर्शन) तो अन्तरमें शुद्धात्माके निर्णयसे होती है। व्यवहार-श्रद्धा भी जिसको सच्ची न हो और कहे कि हमको आत्माका अनुभव है, तो यह मात्र मिथ्या-कल्पना है। आत्माका श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव हो वहाँ उससे सम्बन्धित

व्यवहार भी सच्चा ही होता है। वीतरागके मार्गमें निश्चयमें या व्यवहारमें कोई गड़बड़ी नहीं चलती।

❀ जैसा भावै वैसा होवै ❀

परमात्मस्वरूपको जानकर बारम्बार ध्यानमें उसकी भावना करनेसे जीव स्वयं परमात्मा होता है क्योंकि "जैसा भावै वैसा हो जावै"। ध्यान द्वारा अंतरकी गुफामें गुप्त आत्माको जो अनुभवगोचर करता है वह जिनेन्द्र-भंडारको गुप्त निधि प्राप्त कर, गुप्त मोक्षपदका स्वामी होता है।

❀ आनंदरस पीते-पीते सिद्धपद सधता है ❀

आत्माके अमृतका पान करते करते सिद्धपद प्राप्त होता है और सिद्ध भगवान सदा उस आनंद-रसका पान करते हैं। यह बात गाथा ५०२ में श्री तारणस्वामी कहते हैं।

पीओसि परम सिद्धं पीवन्तो विमल ज्ञान सुद्धं च।
रहियो संसार सुभावं रहियो सरनि कम्म गलियं च ॥ ५०२ ॥

आत्माके शुद्ध स्वभावकी धुन बारंबार अभ्यास करने योग्य है। शुद्ध आत्माके अनुभव द्वारा परम-अतीन्द्रिय आनंद-के अमृतका पान करते करते मोक्षमार्ग और मोक्षका साधन होता है। मोक्ष और मोक्षमार्ग दोनों आनंदमय हैं। आनंद-

रस पीते-पीते सिद्ध भगवन्तोंने मोक्षका साधन किया और सदाकाल वे आनंद-रस पीते हैं। अरे, मोक्ष तो पूर्ण आनंद है, वह क्या दुःख द्वारा सधता है? आनंदका साधन भी आनंदरूप है। इससे कहते हैं कि हे भव्य जीवो! तुम ऐसे ज्ञानानंद-अमृतका पान करो, इसके पान द्वारा संसारका अभाव होगा।

यह ज्ञानसुधा-रस किस भांति पियें?—क्या, पानी जैसा हाथका खोबा भरकर पियें?

तो कहते हैं कि भाई, तेरा हाथ तो मति-श्रुत ज्ञान है, यह जड़ हाथ तेरा नहीं। अंतरस्वभावकी श्रद्धा करके उसमें श्रुतज्ञानको एकाग्र करते हुये निर्विकल्प आनंद-रस पिया जाता है अर्थात् अनुभव किया जाता है; ऐसे आनंदका अनुभव ही ध्यानकी सिद्धि है, यही भगवानके उपदेशका सार है। पुण्य-पाप तो संसाररूप विभाव है, उससे रहित ज्ञान-आनंदरूप मोक्षस्वभाव है, उस मोक्षकी प्राप्ति हेतु निर्विकल्प आनंदरस पीजिये।

सिद्धके परिचयसे शुद्ध आत्माका परिचय होता है

श्री तारणस्वामी गाथा ५०२ में कहते हैं कि—

दिस्टंति तिहुवनग्रं देखंतो विमल कम्म मुक्कं च।
जितियं च तिविह कम्मं जितयंतो अनिष्ट कम्म वन्धानं ॥५०३॥

तीनलोकके अग्रभागमें विराजमान ऐसे सिद्धभगवानके स्वरूपका जो भव्य जीव मनन करता है अर्थात् उनको श्रद्धा-ज्ञानमें लेता है वह अपने वैसे ही शुद्धस्वरूपको देखता है, और शुद्धस्वरूपके देखनेसे उसके कर्म छूट जाते हैं। शुद्ध-स्वभावके अनुभव द्वारा त्रिविधि कर्मोंको वह जीत लेता है; उसको कर्मबन्धन होता नहीं। ऐसा कहते हुये संवर-निर्जरारूप मोक्षमार्ग बताया। सिद्ध जैसे अपने शुद्धात्माके भजन द्वारा ही संवर-निर्जरा-मोक्ष होता है।

'चेतनरूप अनूप अमूरत
सिद्ध समान सदा पद मेरो।'

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने आत्माके शुद्धपनेका अनुभव करता है। तीन लोकके शिखर पर (लोकाग्रमें) अनन्त सिद्ध-भगवान विराज रहे हैं और अतीन्द्रिय आनन्द-रस पी रहे हैं। जहां एक हैं वहां ही अनन्त सिद्ध हैं किन्तु प्रत्येककी सत्ता-प्रत्येकका अस्तित्व भिन्न है। सबका उत्पाद-व्यय-ध्रुव अपनी अपनी सत्तामें ही होता है। लोकके जितने प्रदेश हैं ऐसे ही असंख्य प्रदेश प्रत्येक आत्माके हैं और वे सब प्रदेश शुद्ध ज्ञान-आनन्दरससे भरे हुए हैं।-ऐसे आत्माको सम्यग्दृष्टि अपने अन्तरमें देखता है, और ऐसे ध्यानसे ही मोक्षका साधन होता है अतएव वह सार है।

卐 चौदहवाँ प्रवचन 卐

[वीर सं. २४८९ आश्विन शुक्ला १]

शुद्ध कार्यका कारण भी शुद्ध होता है, अशुद्ध नहीं

श्री तारणस्वामी रचित उपदेश शुद्धसारमें मोक्षमार्ग-अधिकारकी गाथायें पढ़ी जा रही हैं। भगवानका जो शुद्ध उपदेश है उसका सार क्या है, अथवा सच्चा मोक्षमार्ग क्या है उसका यह वर्णन है। भगवानने शुद्धस्वभावका ग्रहण करनेको कहा है और वही मोक्षमार्ग है– ऐसा गाथा ५०४ में कहते हैं:—

लेतं सुद्ध सहावं लेयंतो विमल कम्म गलियं च।
कलितं अप्प सहावं कलयंतो सुद्ध कम्म गलियं च ॥५०४॥

शुद्ध स्वभाव ग्रहण करने योग्य है। इस शुद्ध स्वभावका ध्यान करनेसे कर्म गलते हैं। आत्मस्वभावके वारंवार अभ्याससे, वारंवार चिन्तनसे कर्मोंका क्षय होता है। सबमें सार शुद्धोपयोग है, यही कर्मक्षयका कारण है।

जिसकी रुचि उसीका मंथन

देखो, इसमें एक ही बात बारंबार आती है-किन्तु यह तो भावना है, अतः उसमें पुनरुक्ति दोष नहीं माना जाता। जिसको जिसकी रुचि होती है वह बार-बार उसका मंथन करता है, उसमें उसको अरुचि नहीं लगती। यहां आत्मस्वभावकी रुचि है, वही प्रिय है, इसलिये पुनः पुनः उसका स्वरूप चिंतन-मननमें लेकर अपनी भावनाको पोषता है। शुद्ध आत्माकी भावना द्वारा भावशुद्धि प्रगट होती है वह मोक्षमार्ग है।

❀ आत्माके शुद्ध स्वभावका वर्णन ❀

समयसार, प्रवचनसार आदिमें अलिंगग्राह्य आत्माका वर्णन कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अलौकिक शैलीसे किया है। उसका अनुसरण करके ज्ञानसमुच्चयसार (गा० ७७४)में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि शुद्ध निश्चयनयसे असंख्य प्रदेशी चैतन्यस्वरूप जीवमें कोई शब्द नहीं, ऐसा कोई इन्द्रियगम्य चिन्ह उसमें नहीं कि जिसके द्वारा शुद्धजीवको ग्रहण किया जा सके, उसमें हलन-चलनादि कोई क्रिया नहीं, उसकी उत्पत्ति नहीं, नाश नहीं, सदा एकरूप परमशुद्ध स्वरूप है। द्रव्यस्वभाव अपेक्षासे वह निष्क्रिय है, उसमें स्वाभाव-

पर्यायरूप क्रिया अथवा विभाव-पर्यायरूप क्रिया है यह पर्याय-नयका विषय है। शुद्धनय ऐसे अबद्धस्पृष्ट शुद्ध आत्माको देखता है, अनुभवता है, और यही सम्यग्दर्शन है, इसका वर्णन समयसारमें किया है। यहां गाथा ७७५ में भी श्री तारणस्वामी कहते हैं कि जीव स्पर्श-रस-गंध-वर्ण-शब्द रहित अमूर्तीक है तो भी अरूपी चेतनाके निर्मल आकारको वह धारण करता है, चैतन्य-चिन्ह द्वारा वह साक्षात् अनुभवमें आ सकता है। अतएव स्व-सन्मुख होकर ऐसे आत्माको ग्रहण करनेका उपदेश है। 'सुद्ध सहावं लेतुं' अर्थात् शुद्ध-स्वभावको लो, ग्रहण करो, अनुभव करो।

शुद्ध आत्मा लेतं, राग आतं परंतु लेतं नहीं

जगतमें जीव, परमाणु आदि छह द्रव्य हैं, जीव-पुद्गल संख्यामें अनंत हैं। ऐसे अनंत द्रव्योंमेंसे अपने जीवको अंतरमें अनंतगुणके एक पुंजके रूपमें देखना अर्थात् अनुभवमें लेना चाहिये। ऐसे शुद्ध आत्माका ग्रहण करनेसे ही शुद्ध पर्यायरूप मोक्षमार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है। उसमें कहीं शरीरकी सहाय नहीं, विकल्पकी सहाय नहीं। शुभ विकल्प आये वह भी मोक्षमार्गमें नहीं, उसका स्थान बंधमार्गमें है। वह आतं (आता है) परंतु लेतं (लेने योग्य) नहीं,-ग्रहण करने योग्य नहीं, ग्रहण करने योग्य अनंतगुणरूप शुद्धआत्मा ही है।

रागादि विकार स्वभावसे बाह्य हैं, व्यक्त हैं, प्रगट हैं; यह स्वभाव रागके समय भी भीतर गुप्तस्वरूप (अव्यक्त) शुद्ध निर्विकल्प चैतन्यस्वरूप है, उसको उपादेय मानना, उसमें पर्यायको एकाग्र करना, वह मोक्षमार्ग है। निश्चय-रत्नत्रयधारी मोक्षमार्गी भावलिंगी दिगंबर संत मुनिको भी जितना राग-अंश है उतना बंधभाव है—अशुद्ध है, वह राग-अंश मोक्षका कारण नहीं। भीतर शुद्ध स्वभावके श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप निर्मल वीतराग-अंश ही सच्चा मोक्षमार्ग है। अहो, ऐसे स्वाश्रित (निरपेक्ष) मोक्षमार्गको हे जीव ! तूं जान तो सही। ऐसे मोक्षमार्गको जाननेसे ही तेरी रागमें आत्मबुद्धि छूट जायगी। मुनियोंकी दशामें जो राग है वह भी जहां उपादेय नहीं अथवा मोक्षका कारण नहीं वहां अन्य साधारण रागकी तो बात क्या ?

देखो, यह जिनोक्त तत्व ! वीतराग-कथित तत्व तो वीतराग-भावका ही पोषक होता है और वीतरागका तत्व कहो या आत्माके स्वभावका तत्व कहो—यही आत्माका सच्चा स्वरूप है।

* जिनरंजन और लोकरंजन *

जिन भगवानका कहा हुआ मार्ग, और अन्योंके कहे मार्ग यह सब एक जैसे नहीं, दोनों बिलकुल भिन्न हैं। 'जिनरंजन'

का और 'लोकरंजन' (जनरंजन) का मेल नहीं खाता। जिनोक्त तत्व पृथक् है और लौकिक जन जो मान रहे हैं वह पृथक् है। जिनदेव-कथित मार्ग तो अन्तरमें स्व-सन्मुखताका है, वह कोई लोकरंजनके लिये नहीं। लोक-रंजन द्वारा निरंजन नहीं हो पाते। लोकजन तो बावले हैं, लोकरंजन करें तो जिनरंजन नहीं होता। जनरंजनमें जो अटक गये तो जिनोक्त तत्वको भूल गये। रागसे परे विज्ञानमय जिनोक्त तत्व है उसको जो नहीं जानता वह जनरंजनके अर्थ रागका अनुमोदन करता है। किन्तु जिनरंजन करनेवाला अर्थात् जिनमार्गको जानकर उसकी रुचि करनेवाला लोक-रंजनके अर्थ रुकता नहीं है। उपदेश शुद्धसार गाथा ११७में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि—

जिन उक्तं नहु दृष्टं, जन उक्तं रंजनस्य सद्भावं।
ज्ञान विज्ञान न रुचियं, अज्ञानं–अनुमोय ज्ञान विरयति॥

विपरीत मार्गमें लगे अनेक प्रकारके रागी–अज्ञानी जीव जिनेन्द्र भगवान कथित तत्वोंके उपर दृष्टि नहीं करते और जनरंजनमें अर्थात् जिनसे लौकिक जनता रजायमान होती है ऐसे बाह्य भावोंमें लगे हैं, उनको लोकोत्तर–आत्मज्ञान रुचता नहीं है, और अज्ञानकी अनुमोदना करके ज्ञानकी विराधना करते हैं। ऐसे जीव कुगुरुकी शरण लेकर संसारमें ही भ्रमते हैं। ऐसे कुमार्गको छोड़कर हे जीव! तुम जिनवर-

कथित मोक्षमार्गकी अनुमोदना करो, उसकी आराधनासे शुद्धात्माको प्रसन्न करो। अज्ञानी लोगोंको प्रसन्न करनेके ऊपर अज्ञानीका लक्ष है, किन्तु जिसमें अपना हित हो ऐसी आत्म-प्रसन्नता (-आत्माकी आराधना) पर उसका लक्ष नहीं, ऐसे जीवोंको रागस्वभावी कहा है अर्थात् अज्ञानके लिये वह रागमें ही रचापचा रहता है, किन्तु वीतराग-मार्गका आराधक रागकी रुचि नहीं करता।

आत्मा केवलज्ञानकी अनन्त किरणोंसे परिपूर्ण चैतन्य-सूर्य है, उसकी श्रद्धा-उसका ज्ञान जो नहीं करता और रागादिको धर्म मानकर अज्ञानका अनुमोदन करता है वह जीव धर्मका त्याग करके अधर्मका सेवन करता है। जैन-दर्शनमें सर्वज्ञ परमात्माने जो उपदेश दिया है उसके साथ अज्ञान-मतोंका मेल नहीं होसकता, प्रकाशके साथ अन्धकार-की तुलना नहीं हो सकती; अस्तु अपने हितहेतु मुमुक्षु जीवोंको सर्वज्ञके उपदेशानुसार आत्माका स्वरूप जानकर उसका सेवन करना चाहिये।

शुभाशुभ रागको मोक्षमार्ग मानना अज्ञान है

आगे ५०५ वीं गाथामें श्री तारणस्वामी कहते हैं कि इन्द्रियोंसे अगोचर आत्माको अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा लक्षगत करके उसका अनुभव करो :—

लक्ष्यंतु अलख लखियं लक्ष्यंतो लोयालोय विमलं च ।
अनुमोय विज्ञान ज्ञानं अनुमोय विशुद्ध कम्म गलियं च ॥
(५०५)

मन-वचन-कायसे जो जाना नहीं जा सकता हो, विकल्पसे जिसे नहीं जान सकते हों, ऐसे अलक्ष्य शुद्धात्माको ज्ञान द्वारा लक्षित करके अनुभव करने योग्य है, उसके अनुभवसे लोकालोक प्रकाशक निर्मल केवलज्ञान प्रगट होता है। भेदविज्ञानपूर्वक ऐसे अतीन्द्रिय आत्माके अनुभवसे परम आनंद होता है और कर्म नष्ट होते हैं। इसप्रकार शुद्धआत्माका अनुभव ही मोक्षमार्ग है, यह बात बारंबार घोट-घोटकर स्पष्ट की है। इसके अतिरिक्त शुभाशुभ रागको मोक्षमार्ग मानना अज्ञान है, कुमार्ग है। शुभराग ज्ञानीको आता है और अज्ञानी को भी आता है, ज्ञानी उसको मोक्षमार्ग नहीं मानता, अज्ञानी उसे ही मोक्षमार्ग मानकर सच्चे मोक्षमार्गसे विमुख रहता है।

आत्माके स्व-देशमें रहे उसे सच्चा देशव्रत होता है

आत्माका वास, आत्माके रहनेका स्थान तो अपने स्वभावमें हो है। ज्ञानसमुच्चयसार गाथा ४८३ में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि 'देसो सुद्धसहाओ....' आत्माका शुद्धस्वभाव ही आत्माका स्वदेश है। शुद्धज्ञान-दर्शनसे भरे अपने देशमें बसना अर्थात् लीन रहना परमार्थ देशव्रत और महा-

व्रत है। ज्ञान-दर्शन स्वभावसे भरे असंख्य प्रदेशी अपने देशसे बाहर (रागादिमें-देहादिमें) रहना जो माने उसे सच्चे देशव्रतादि नहीं होते, वह तो परभावरूपी परदेशमें रहता है। अनन्तसुखका धाम असंख्यप्रदेशी चैतन्यस्वरूप ही धर्मीका सच्चा रहनेका स्थान है, उसमें एकाग्रतासे श्रावकपना और मुनिपना होता है। जहां असंख्यप्रदेशी निर्विकल्प चैतन्यधाममें लीन हुआ वहां ऐसी क्षेत्र-मर्यादा हो गई कि मेरे इस असंख्यप्रदेशी स्वभावसे बाहर न निकलूँ। रागादिक भाव भी निश्चय ही स्व-प्रदेशकी वस्तु नहीं। स्व-प्रदेश तो ज्ञान-आनन्दरूप निर्मल स्वभावोंसे भरा है। ऐसे स्वदेशमें बसनेसे जीव सुखी होता है।

शुद्ध कारण-कार्य

ज्ञानसमुच्चयसार गाथा ८०-८१ में शुद्ध कारण-कार्यकी बात कही है। शुद्ध कार्यकी उत्पत्ति शुद्ध कारणसे होती है। मोक्ष पूर्णशुद्ध कार्य है और शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका कारण है, ऐसे शुद्ध कार्य-कारणको जानकर मोक्षार्थियोंको उसका उद्यम करना चाहिये। रागादि अशुद्धभाव शुद्ध कार्यका कारण नहीं हो सकते। अशुद्ध कारणके सेवनसे शुद्ध कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। कारणके अनुसार कार्य होता है, कारण और कार्य एक जातिके होते हैं। उपदेश शुद्धसारकी ५२५वीं गाथामें भी कहते हैं कि जैसा कारण होता है वैसा

ही कार्य होता है (शुद्ध कारण-कार्यकी वात अष्ट-प्रवचन प्रथम भागमें आ गई है।)

आत्मामें सम्यक्त्वका प्रकाश होते ही शुद्ध-अशुद्ध सभी तत्त्वोंकी परीक्षा हो जाती है। सम्यग्दृष्टि जीव, कौन तत्व विभावरूप हैं उनको पहचानकर विभावको छोड़ता है। जितने रागादि अशुद्धभाव हैं वे सभी विभाव हैं। वे मोक्षमार्ग नहीं। स्वभावके श्रद्धा-ज्ञान-आचरणरूप जो शुद्धभाव हैं वे स्वभाव हैं और वे मोक्षमार्ग हैं, मोक्षका वह शुद्ध कारण है।

❀ स्वानुभव द्वारा अलखको लखनेकी वात ❀

यहां (गाथा ५०५ में) अलख आत्माको लखनेकी (अनुभव करनेकी) वात चलती है। अलखको किस प्रकार लखना? तो कहते हैं कि स्वानुभवसे लखना चाहिये। आत्मा इन्द्रियोंसे अलख-अगोचर होते हुये भी स्वानुभवसे लक्षगोचर होता है। जो स्वानुभवसे लक्षगोचर होता है ऐसा न हो तो 'आत्मा अलख है' ऐसी जानकारी कहांसे होती? अस्तु सर्वथा अगोचर नहीं है। उसके अनुभवकी जो रीति है उस रीतिके द्वारा वह स्वानुभव-गोचर है। अतएव लक्ष्यंतु—अंतर्मुख ज्ञानसे लक्ष्यगत करके आत्माका अनुभव करो। इस-प्रकार अलखको लखते हुए लोकालोक भी जाननेमें आ जाता है। अलख आत्माको अनुभवमें लेनेसे मोक्षमार्ग होता है और उसके फलमें लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान होता है।

यह कारण और कार्य दोनों शुद्ध हैं। शुद्धोपयोग कारण, केवलज्ञान कार्य, इनके बीच राग नहीं। रागसे रहित ऐसे वीतरागी भेदज्ञानसे आनंदका अनुभव होता है। आनंदके अनुभवका लाभ होनेसे कर्म गल जाते हैं और केवलज्ञान प्रगट होता है। इष्टकी प्राप्ति और अनिष्टका नाश शुद्धोपयोगसे होता है। ऐसे शुद्धोपयोगका उपदेश है। रागादि अशुद्धभावसे शुद्धताकी प्राप्ति होना कहे वह अशुद्ध उपदेश है, वह उपदेश शुद्ध नहीं-सच्चा नहीं।

* भावना *

सम्यग्दृष्टि अंतरमें अपने शुद्ध आत्माको देखकर बारंबार उसकी भावना करता है। शुद्धताकी भावना बारंबार करनेमें कोई पुनरुक्ति-दोष नहीं लगता। यह भावना तो बारंबार करने योग्य है। कहा है कि—

भावयेत् भेदविज्ञानम् इदमच्छिन्न धारया।
तावत् यावत् परात्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते॥

अहो, शुद्धात्माके अनुभवरूप शुद्ध मोक्षमार्ग भगवंतोंने प्रसिद्ध किया है। ऐसे मोक्षमार्गसे ही जगतका कल्याण है। कथन भले अनेक प्रकारसे हो किन्तु शुद्ध मोक्षमार्ग एक ही प्रकारका है। अलग-अलग दो प्रकारका मोक्षमार्ग नहीं। ऐसे शुद्ध मोक्षमार्गको जानकर उसके कारणरूप भेदविज्ञानकी भावना बारंबार करना चाहिये।

बुद्धिमान मुमुक्षु अपने शुद्धकार्य हेतु शुद्ध कारणको (शुद्ध उपयोगको) सेवता है

गा० ५४९ (उपदेश शुद्धसार)में कहते हैं कि कारणसे कार्यको उत्पत्ति होती है। कारणरूप शुद्ध उपयोग उससे कार्यकी-मोक्षकी उत्पत्ति होती है। पराश्रयसे वीतराग भाव नहीं होता किन्तु राग ही होता है। दूसरी ओरका उपयोग अशुद्ध उपयोग है। स्व-द्रव्यमें उपयोग शुद्ध उपयोग है। शुद्ध उपयोगसे ही रागका नाश होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। इसप्रकार शुद्धस्वभावकी ओरका उद्यम ही निर्मल कार्यका कारण है। यह कारण और कार्य दोनों शुद्ध हैं। कारण-कार्यके सम्बन्धमें जैनदर्शनका यह निश्चल सिद्धात है, अर्थात् वस्तुस्वरूप ऐसा है कि कारण और कार्य दोनों एक जातिके होते हैं। जिसप्रकार स्वर्णमेंसे स्वर्ण-आभूषण होते है, लोहे-मेंसे स्वर्ण-आभूषण नहीं होते, उसी प्रकार शुद्ध कारणके सेवनसे शुद्धकार्य होता है, अशुद्ध कारणके सेवनसे शुद्ध-कार्य नहीं होता। रागके सेवनसे वीतरागता नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति-पूजा-स्वाध्याय आदि व्यवहार शुभ-राग है अवश्य किन्तु वह शुभ राग 'लेतं' नहीं, 'हेयं' है, अर्थात् यह उपादेय नहीं किन्तु हेय है-ऐसी श्रद्धा करना चाहिये। उपादेयरूप शुद्ध आत्मा ही है, उसके आश्रयसे ही संवर-निर्जरा और मोक्ष होता है। अतएव बुद्धिमान मुमुक्षु

अपने शुद्ध कार्यके अर्थ सदैव ऐसे शुद्ध कारणका सेवन करते हैं।

❀ पंचमकालमें मोक्षमार्ग कैसा है? ❀

भगवानके शुद्ध मार्गमें अशुद्धता नहीं मिलती। वह तो वास्तविक बुद्धिमान (भेदज्ञानी) है कि जो शुद्ध-अशुद्ध भावोंका पृथक्करण करके सदैव शुद्ध कारणका सेवन कर मोक्षमार्गका साधन करता है और बीचमें कभी रागादि कारणोंको मोक्षमार्गमें मिलाता नहीं। सदैव एक शुद्ध मार्ग है उसमें अशुद्धताका अंश भी नहीं। मुमुक्षुओंको इस पंचम-कालमें भी मोक्षमार्ग-हेतु शुद्ध कारणका ही सेवन करना चाहिये। पंचमकाल है—इसलिये राग मोक्षमार्ग हो जाय ऐसा कभी होगा नहीं। जिसप्रकार पंचमकालमें भी मुनिदशा वस्त्र सहित नहीं होती; कोई माने भले, किन्तु वीतराग मार्गी मुनिवरोंकी दशा तो तीनकालमें अचल-दिगम्बर ही होती है, वैसे ही मोक्षका मार्ग तीनकालमें शुद्धतारूप ही है, उसमें रागादि अशुद्धभावका मेलजोल नहीं। अशुद्ध रागादिको कोई मोक्षमार्ग भले मान ले पर उससे वह मार्ग थोड़े ही हो जायगा। सीमंधर भगवान आदि तीर्थंकर भगवन्त अभी इस जंबूद्वीपमें विराज रहे हैं, वे भी ऐसे ही मोक्षमार्गका उपदेश कर रहे हैं। 'एक होय त्रण कालमां परमारथनो पंथ' तीनोंकालमें एक ही मोक्षमार्ग है।

❀ ज्ञानका सार–शुद्धात्म–भावना .. उसके बिना सभी व्यर्थ ❀

ज्ञानका सार यह है कि प्रथम शुद्धआत्माकी भावनासे भावशुद्धि प्रगट करना चाहिये, और अशुद्धभाव (शुभ–अशुभ दोनों) छोड़ना चाहिये। शुद्ध भावके बिना सभी व्यर्थ है। छहढालामें भी पं. दौलतरामजी कहते हैं कि—

मुनिव्रत धार अनंतवार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान विना सुख लेश न पायो।

मोक्षमार्ग श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप है। पहले श्रद्धा सुधरे बिना आचरण कहाँसे सुधरेगा? सम्यग्दर्शन बिना व्रत–त्याग ये सभी मोक्षमार्ग–हेतु निष्फल हैं, क्योंकि उनमें शुद्धताका अंश भी नहीं। अतएव पहले शुद्धात्माकी श्रद्धा करो और अशुद्धताकी उपेक्षा करो। पुण्यका राग भी अशुद्धता है। जिसको पुण्यकी रुचि है उसको आत्माके धर्मकी रुचि नहीं। अज्ञानी रागके उपभोगको ही अपना मानता है, ज्ञानीका उपभोग बिना रागका शुद्धभावरूप है, वह अतीन्द्रिय आनन्द-रूप है। जीवके परिणामोंसे बन्ध–मोक्ष होता है; अशुद्ध परिणामसे बन्ध और शुद्ध परिणामसे मोक्ष होता है। इसके अतिरिक्त अन्यसे जीवको बन्ध–मोक्ष होता नहीं। अन्य कोई इस आत्माको बांधे या मुक्त करे–ऐसी मान्यता तो ईश्वरको

जगतकर्त्ता मानने जैसा मिथ्यात्व है। जिसप्रकार परमेश्वर जगतका कर्ता नहीं उसीप्रकार अन्य कोई इस आत्माके बन्ध-मोक्षका कर्ता नहीं, वैसे ही यह आत्मा दूसरेका कर्ता नहीं। भाई! तेरे अशुद्ध परिणाम जैसे तू करेगा उसके अनुसार ही तेरी मुक्ति या बन्धन होता है। तेरे परिणामको परवस्तु सुधारती या बिगाड़ती नहीं। शुद्धआत्माकी सन्मुखता-से तेरे परिणाम सुधरनेसे (अर्थात् शुद्ध होनेसे) मोक्षमार्ग प्रगट होता है। इसलिये अपने भावश्रुतको शुद्धआत्मामें लगा। यही भगवानके उपदेशका सार है और यही मोक्षमार्ग है।

[१५]

पन्द्रहवाँ प्रवचन

[वीर सं. २४८९ आश्विन शुक्ला ३]

*

शुद्धज्ञानको जानना जिनोपदेशका सार है

आश्विन शुक्ला १ को चौदहवाँ प्रवचन हुआ, उसके पश्चात् आश्विन शुक्ला ३ को पन्द्रहवाँ प्रवचन हुआ। बीचमें आश्विन शुक्ला २ को समयसार गाथा १४४ पर पू. स्वामीजीका प्रवचन हुआ जिसका सार इस पुस्तकके परिशिष्टमें 'सम्यग्दर्शनकी रीति' शीर्षकमें दिया है।

'उपदेश शुद्धसार' अर्थात् सर्वज्ञ भगवान द्वारा किया गया वीतरागी उपदेशका सार क्या है? उसकी यह बात है। सर्वज्ञकी वाणी-अनुसार ज्ञानीका उपदेश कैसा होता है? उसमें शुद्धात्माका स्वरूप क्या कहा है? आत्माका स्वतत्त्व क्या है और परतत्त्व क्या है? उसका ज्ञान सर्वज्ञ-वाणीके अनुसार करनेसे आत्माका ज्ञान होता है। श्री तारणस्वामी कहते हैं कि आत्माका ज्ञान जिससे हो ऐसा उपदेश देना चाहिये। उपदेश शुद्धसारकी गाथा ५०६ कहते हैं कि—

जानंति ज्ञान विमलं, जानंतो अप्प परमप्प कम्म गलियं च ।
कहंतु विमल ज्ञानं, कहयंतो ज्ञान विज्ञान स सहावं ॥

शुद्ध आत्मज्ञानको जानना चाहिये। आत्मा शुद्ध ज्ञान-स्वरूप है ऐसा जानने पर उससे विरुद्ध अशुद्धता क्या है? और वह अशुद्धता कैसे हुई उसका ज्ञान भी आ जाता है। आत्माके स्वभावमें रागादि अशुद्धता नहीं किन्तु पर्यायमें अपने दोषसे अशुद्धता होती है; वह किसी अन्यने अथवा कर्मने नहीं कराई-ऐसा जाने उसे ही शुद्धता और अशुद्धताका वास्तविक भेदज्ञान होता है।

आत्माका शुद्ध ज्ञानस्वभाव और रागादि अशुद्धता यह दोनों अलग हैं। पर्यायमें रागादि अशुद्धता और कर्म आदि परद्रव्य यह दोनों अलग हैं। -इस भांति शुद्ध स्वभाव, क्षणिक अशुद्धता और पर वस्तु इन तीनोंको जानकर भेद-ज्ञान करना चाहिये। ऐसा भेदज्ञान करना सर्वज्ञ भगवानके उपदेशका सार है।

* आत्मा-अनात्माका भेदज्ञान *

आत्मा और परमात्माके स्वरूपका ज्ञान करनेसे कर्म गल जाते हैं। परमात्मा जैसा ही इस आत्माका परमार्थ स्वभाव है—ऐसी पहिचान करे तभी कर्मसे भिन्न आत्माका अनुभव होता है और कर्म गल जाते हैं। वाह! भेदज्ञानकी

भावनाका श्री तारणस्वामीने वारम्वार मंथन किया है। ऐसे भेदज्ञानका अभ्यास करने योग्य है।

आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वभावी होते हुये भी उसकी पर्यायमें अशुद्धता और आवरण है। वास्तविक आवरण अपने मिथ्यात्वादि भावका है, और निमित्तरूपसे ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोंका आवरण है। उन भावकर्म और द्रव्यकर्म दोनोंकी पर्यायें भिन्न भिन्न हैं। वास्तवमें वह एक-दूसरेके कारणसे नहीं होती। शुद्ध आत्माको पहिचाननेसे ऐसा आवरण अर्थात् भावकर्म अथवा द्रव्यकर्म इन दोनोंका विलय और विमल ज्ञानका प्रकाश होता है।

शुद्ध आत्माका ज्ञान करो-ऐसा कहे किन्तु उस समय अपनी पर्यायमें अशुद्धता कितनी है? उसका कारण क्या है? और वह कैसे दूर हो सकती है?-इसका भी बराबर ज्ञान होना चाहिये, उसमें विपरीतता हो तो सच्चा ज्ञान नहीं होता। परके कारण आत्माकी अशुद्धता होना माने तो उसको आत्माकी शुद्धता या अशुद्धता एकका भी सच्चा ज्ञान नहीं। जिस प्रकार स्वद्रव्य और परद्रव्य दोनों अनादिसे भिन्न हैं, उसी प्रकार दोनोंकी परिणति भी बिल्कुल भिन्न, अपने-अपने कारणसे स्वतंत्र होती है। रागादि अशुद्धता आत्माका वास्तविक स्वरूप नहीं, किन्तु स्वरूपसे विपरीत भाव है इससे उसको 'अनात्मा' कहा जाता है, उस अनात्माके परिहारसे आत्माकी सिद्धि होती है, अर्थात्

दोनोंका स्वरूप पहिचानकर भेदज्ञान करनेसे ही आत्माका सच्चा अनुभव होता है।

रागादि अनात्माको अनात्माकी भांति जो नहीं जानता उसको आत्माका भी ज्ञान नहीं और जिसे शुद्ध आत्माका ज्ञान नहीं उसे अनात्माका भी ज्ञान नहीं, वह तो रागादिको भी धर्मका कारण मानता है, अनात्म-भावोंको ही आत्मा मानता है और आत्मा–अनात्माको एक जैसा देखता है, उसको सम्यग्दर्शन नहीं। जिसको आत्मा-अनात्माकी भिन्नताका भान नहीं हो उसको भेदज्ञान कौन कहेगा? यह बात समयसारके निर्जरा अधिकारमें आचार्यदेवने समझायी है। भगवानके उपदेशका सार तो यह है कि आत्मा और अनात्माकी भिन्नता जानकर शुद्ध आत्माका अनुभव करना। जड़के या पर्यायके अशुद्ध अंशको ही जो आत्माकी भांति अनुभव करता है और अखंड चिदानंदरूप शुद्धतत्वकी जिसको जानकारी नहीं उसने भगवानके उपदेशके सारको नहीं जाना, उपदेशके रहस्यकी उसको जानकारी नहीं। शुभ रागके एक अंशको भी शुद्ध ज्ञानके साथ मिलावे तो उसको आत्मा–अनात्माका भेदज्ञान नहीं। भगवानका उपदेश तो उपयोगका और रागादि अन्य भावोंका सर्वथा भेदज्ञान कराता है।

❀ जिनागममें ज्ञानको मोक्षका कारण कहा है ❀

सभी जीव सदैव ज्ञानस्वरूप हैं। 'सर्वे जीव छे ज्ञान-

मय '—इस प्रकार आत्माको ज्ञानस्वरूप ही देखना वीतरागी-समभावका कारण है। निगोद दशा वाले जीवको भी ज्ञानादिके किसी अंशका उदय है तो वह अपने ही कारणसे है, किन्तु इतने अल्प विकास जितना सम्पूर्ण आत्मा नहीं। इस भांति पर्यायदृष्टि छोड़कर, राग बराबर अथवा अल्पज्ञता बराबर ही अनुभव करना छोड़कर, ज्ञान-आनंद स्वभावसे परिपूर्ण आत्मा है-ऐसा अपनेमें पूर्ण स्वभावको दृष्टिमें और अनुभवमें लेनेसे आत्मज्ञान होता है और उस आत्मज्ञानसे कर्मोंका नाश होता है। ज्ञानसे ही कर्म झरते हैं। अन्य किसी उपायसे नहीं। अतएव जिनागममें ज्ञानको ही मोक्षका कारण कहा है।

ज्ञानके विमल स्वभावका उपदेश देना चाहिये, और ध्यानमें भी बारंबार उसका अभ्यास करना चाहिये। पद्म-नंदीपच्चीसीमें भी कहा है कि इस ज्ञानस्वरूप आत्माका जो बारंबार अभ्यास करते हैं-कथन करते हैं-विचार करते हैं और सम्यक्त्वरूपेण भावना करते हैं वे अल्पकालमें ही नव केवललब्धिस्वरूप, अक्षय-अनुपम-अनंत सुखमय मोक्षको पाते हैं। ऐसे आत्माको जानकर बारंबार उसकी भावना करने योग्य है।

'ज्ञानसमुच्चयसार' में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि-

रूवं भेयविज्ञानं नय विभागेन सद्दह सुद्धं।
अप्प सरूवं णिच्छदि नय विभागेन सार्द्ध दिट्ठं ॥ ६६३ ॥

नय-विभाग द्वारा शुद्ध रूपका श्रद्धान करना अर्थात् निश्चयनय द्वारा परसे विभाग करके अपने शुद्धस्वरूपका श्रद्धान अर्थात् भेदविज्ञान करना चाहिये। निर्मल दृष्टि नयविभाग द्वारा अपने स्वरूपको यथार्थ देखती है। अशुद्ध पर्याय आत्माकी है ऐसा बतानेवाला व्यवहारनय अभूतार्थ है, वह शुद्ध आत्माके स्वरूपको दिखाता नहीं, निश्चनय शुद्ध आत्माके स्वरूपको दिखाता है, इसलिये वह भूतार्थ है। ऐसी भूतार्थदृष्टिसे ही आत्माका सच्चा स्वरूप पहिचानमें आता है और सम्यग्दर्शन होता है। अतएव कहते हैं कि-निश्चयनय द्वारा स्व-परके विभाग करके शुद्ध आत्माको जानो और शुद्ध श्रद्धा करो। पर्यायमें रागादि भाव हैं और कर्म-संबंध है यह सब व्यवहार नयका विषय है, उनको उस नय-विभागसे जानना, और उससे भिन्न शुद्धआत्माको शुद्धनयसे जानना। ऐसे नयविभागसे स्व-परको भिन्न जानना जिनो-पदेशका सार है, और वह मोक्षका कारण है।

* सम्यग्दर्शनकी सरस रीति *

आत्माके द्रव्य-गुण-पर्यायका ज्ञान करनेमें किसीको अरुचि लगती है, पर भाई! द्रव्य-गुण-पर्याय तो वस्तुका स्वरूप है, भगवानने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तु कही है उसको पहिचानना चाहिये। अरिहंत देवके शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायको पहिचाननेसे अपने आत्माका स्वभाव भी पहिचानमें आना

है और सम्यग्दर्शन होता है, मोह मिटता है—यह बात प्रवचनसारकी ८० वीं गाथामें कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समझायी है। मोहका क्षय करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका ऐसा सरल उपाय, उसमें जिसको अरुचि लगे तो वह द्रव्य-गुण-पर्यायका सच्चा ज्ञान कहांसे करेगा? और उसके मोहका नाश कैसे होगा? अरे भाई! जैनदर्शन अलौकिक वस्तुस्वरूप समझाते हुये मोहका नाश कराता है। अस्तु यथार्थ नयविभागसे स्व-पर सबको जान, उनके द्रव्य-गुण-पर्यायको जान और स्व-परको विभाजित कर आत्माके शुद्ध स्वरूपको अनुभवमें ले। —यही मोहके नाशका उपाय है। आत्माका निश्चयस्वभाव एक प्रकारका है और व्यवहारका अनेक प्रकारका है, उसके ज्ञानमें जितनी विपरीतता हो वह सब नयविभागके ज्ञानसे दूर करना चाहिये। द्रव्य-गुण-पर्यायके जाननेमें तो ज्ञानकी स्पष्टता है, और वह तो वीतरागभावका कारण है।

निश्चयनयकी दृष्टि आत्माके शुद्धस्वरूपको देखती है, जैसा शुद्ध स्वरूप है वैसा निश्चयदृष्टि देखती है अर्थात् प्रतीतिमें लेती है। अस्तु कहते हैं कि शुद्ध निश्चयनय द्वारा अपनेको शुद्ध वीतरागमय निश्चय करके उसीका ध्यान करना योग्य है, उसीसे केवलज्ञान प्रगट होता है। साथमें भूमिकाके अनुसार जो अशुद्धता आदि हो उसे व्यवहारनय जानता है, किन्तु शुद्ध स्वरूपको देखनेसे वह अभूतार्थ है, शुद्धस्वरूपके अनुभवमें वह नहीं आता। निश्चयनयसे जो अनुभवमें आता

है वह आत्माका शुद्ध स्वरूप है, वह असली स्वरूप है। उसके अनुभवसे ही सम्यग्दर्शन होता है।

सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध तत्त्वका यथार्थ उपदेश देता है

अपने लिये जो वस्तु लेना है उसको पहिचानना तो चाहिये ना? पहिचानके विना कौनसी लेंगे और कौनसी छोड़ेंगे? अज्ञानी जीवोंने तो ज्ञानस्वरूप आत्माके बदले राग लेकर उसे ही धर्म मान लिया, रागको ही आत्माका सच्चा स्वरूप मान लिया, तो वह जीव रागको कैसे छोड़ेंगे? और रागरहित शुद्ध आत्माको किस प्रकार अनुभवमें लेंगे? भाई! तेरा सच्चा रागरहित स्वरूप क्या है उसको पहिचान। वह ग्रहण करने योग्य है और रागादि अशुद्ध भाव छोड़ने योग्य हैं-ऐसा जान। दोनोंका विषय जैसा है वैसा पहिचाने विना भेदज्ञान अथवा सच्ची श्रद्धा नहीं होती। सम्यग्दृष्टि जीव भेदज्ञान द्वारा स्व-पर तत्वका, उनके द्रव्य-गुण-पर्यायका, देव-गुरु-शास्त्र आदिका यथार्थ स्वरूप जानता है और जैसा भगवानने कहा वैसा ही वह उपदेश देता है। इस सम्बन्धमें 'ज्ञानसमुच्चयसार' (गाथा १६८-१६९ आदि) में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि- अविरत सम्यग्दृष्टि भी उपादेय गुणोंका धारक होता है, उसका मतिज्ञान यथार्थ होता है और भव्य जीवोंके लिये उसका उपदेश भी यथार्थ होता है। चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टिके व्रतादि नियम नहीं होने

पर भी जितने गुण मोक्षमार्गमें सहकारी हैं उसे उनकी श्रद्धा है, उन्हें वह उपादेय समझता है, और भव्य जीवोंको उनका यथार्थ उपदेश देता है। आगे कहते हैं कि—'उपदेशं जिन उक्तं च ' जिनेन्द्र भगवानने जैसा कहा है वैसा शुद्ध-तत्वका यथार्थ उपदेश वह अविरत सम्यग्दृष्टि देता है, अवि-नाशी समतारूप, शुद्ध आत्म तत्वका उपदेश वह करता है। उसकी वाणीमें मिथ्या-उपदेश नहीं होता। एक वार कहा था कि अहो! धर्मीके अंतरमें तीर्थंकर विराजे हैं, अर्थात् धर्मीका उपदेश तीर्थंकरका ही उपदेश है।

सम्यग्दृष्टिका उपदेश 'शुद्ध' है, शुद्ध तत्वको दिखलाने-वाला उसका उपदेश है। मिथ्यादृष्टिको तो अपने ही शुद्ध-तत्वकी जानकारी नहीं तो वह शुद्ध तत्वका यथार्थ उपदेश कहांसे देगा? सम्यग्दृष्टि भले ही चौथे गुणस्थानमें अविरत-दशामें हो तो भी शुद्ध आत्माका निर्विकल्प अनुभव उसको हुआ है, वह उपादेयरूप शुद्धगुणोंसे संयुक्त है, रागादि अशुद्ध भावोंको जानकर उन्हें हेयरूप किया है, -शुद्धात्मासे उन्हें पृथक् किया है, और उसकी वाणीमें भी ऐसा ही उपदेश आता है, इसलिये उसका उपदेश शुद्ध है। जिस प्रकार आर्य मनुष्य कि जो कभी मांस-भक्षण न करता हो, उसकी वाणीमें भी ऐसा उपदेश नहीं आ सकता कि 'मांस-भक्षण करने योग्य है'। -उसी प्रकार जिसने शुद्धात्माको अनुभवमें लिया है और उससे भिन्न रागादि परभावोंको हेय-

रूप जाना है, उसकी वाणीमें भी ऐसा उपदेश नहीं आता कि राग द्वारा जीवको लाभ होगा। शुद्धात्माके ही आदरका उपदेश उसकी वाणीमें आता है। वह रागको मोक्षमार्ग नहीं कहता। ऐसी दशा तो चौथे गुणस्थानमें होती है। मुनिदशाकी बात तो बहुत ऊंची है।

उस सम्यक्त्वीका मति-श्रुत ज्ञान भले ही अल्प है परन्तु उसने स्व-सन्मुख होकर ऐसे शुद्धात्माको अनुभवमें ले लिया है। रागसे पृथक् होकर जिस भावश्रुतसे पूर्ण आत्माको पकड़ा उस भावश्रुतको भी पूर्ण कह दिया और उस जीवको श्रुत-केवली कहा। आत्माके पूर्ण स्वभावको जाना उसमें बहुत-सा ज्ञान समा गया। 'जिसने आत्मा जाना उसने सर्व जाना' (श्रीमद् राजचन्द्र)। सर्वज्ञस्वरूप आत्माको जानना ही सिद्धान्तका सार है। सर्वज्ञस्वरूप आत्माको जिसने जान लिया, मति-श्रुतज्ञानको अन्तरमें ढालकर अपने सर्वज्ञस्वभावको जिसने स्वानुभवमें लिया उसके हृदयमें बिराजकर भगवान बोलते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ भगवानके अनुसार ही उसका उपदेश होता है। इसलिये इसमें ऐसा भी आया कि अविनाशी शुद्ध आत्मतत्त्वको जिसने जाना है वही उपदेश देनेका अधिकारी है। जिसने स्वयं अपने शुद्ध आत्माको नहीं जाना वह जीव शुद्ध आत्माका उपदेश देनेका अधिकारी नहीं, शुद्धात्माका यथार्थ उपदेश वह नहीं दे सकता।

❀ सम्यक्त्वीको ही शुद्ध देव-गुरु और तत्वकी वास्तविक पहिचान है ❀

जिसने रागसे भिन्न हुये शुद्ध आत्माको नहीं जाना, रागमें ही जो पड़ा है, ऐसा रागमें पड़ा अज्ञानी जीव व्रत-तप करे या शास्त्राभ्यास करे, यह सभी उसे कष्टरूप है, उसमें क्वचित् भी ज्ञाताद्रष्टा स्वभावकी अनुभूतिका आनंद नहीं। रागमें आनन्द कहांसे हो? कष्ट रहित अर्थात् रागकी आकुलता रहित जो निजानंद स्वभाव है उसकी पहिचानके विना आनन्द होता नहीं और कष्ट मिटता नहीं। सम्यग्दृष्टिके परिणाममें तो रागसे परे आत्माका अनुभव है, और उस आत्मामें एकाग्रता पूर्वक किये व्रत-तपमें उसको क्लेश होता नहीं किन्तु आनन्दकी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त वह सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीवादि सात तत्त्वोंके भिन्न-भिन्न स्वरूपको जानकर उसका यथार्थ उपदेश करता है। अज्ञानी शुभ विकल्पोंको धर्मका कारण मानता है अर्थात् शुभरागरूप आस्रवको वह संवरमें मिला देता है, संवर कि जो राग-रहित है उसे वह रागरूप मानता है; इसके अतिरिक्त शरीरकी क्रियाको मैं करता हूँ-ऐसा मानता है अर्थात् अजीवको जीवमें मिलाता है किन्तु जीव-अजीवको भिन्न जानता नहीं। इसप्रकार अज्ञानी जीवादि तत्त्वोंको विपरीत मानता है, इससे उसके उपदेशमें विपरीतता होती है।

इसीप्रकार जीवादि छह द्रव्योंके गुण-पर्यायोंको भी सम्यग्दृष्टि ही यथार्थ जानता है, तथा उपदेश देता है। सम्यग्दर्शन पूर्वक श्रावकधर्म और मुनिधर्म कैसे होते हैं, उस दशामें व्रत-महाव्रतादि कैसे होते हैं उनको भी सम्यग्दृष्टि ही बराबर जानता है। अज्ञानी तो केवल रागको ही धर्म मानता है। रागके समय भी धर्मीकी दशामें रागहीन जो शुद्धपरिणाम धारा बह रही है उस शुद्धताको तो अज्ञानी पहिचानता नहीं। धर्मीको वह बाहरसे देखता है किन्तु उसकी अन्दरकी शुद्धताको वह देखता नहीं, अर्थात् धर्मीकी वास्तविक पहिचान उसको होती नहीं। इसलिये कहा है कि जो देव-गुरुके आत्माका वास्तविक स्वरूप जाने तो उसे मिथ्यात्व नहीं रहेगा। देव-गुरुकी यथार्थ पहिचान सम्यग्दृष्टिको ही होती है। अज्ञानी तो शरीरके गुणोंको आत्मामें मिलाकर अरिहन्तादिको पहिचानना चाहता है पर अरिहन्तादिके आत्माका जो यथार्थ स्वरूप है उसे वह पहिचानता नहीं, अतएव वीतरागी देव-गुरुके शुद्धस्वरूपका सच्चा उपदेश भी वह नहीं दे सकता। भगवानके दर्शन-पूजन आदिके शुभरागमें ही कोई धर्म माने, अथवा उसका सर्वथा निषेध ही कर डाले, तो वह यथार्थ उपदेश नहीं। शुभरागकी जितनी सीमा हो उतनी ही जानना चाहिये, शुद्ध देव-गुरुका यथार्थ स्वरूप पहिचानना चाहिये। वीतरागी देव-गुरु कैसे हैं और उनके द्वारा उपदेशित शुद्ध-तत्त्वका स्वरुप कैसा है वह बराबर पहिचानकर पहले ऐसे

सम्यग्दर्शनका उपदेश देना चाहिये, क्योंकि वही धर्मका मूल है। सम्यग्दर्शन होनेके पश्चात् मुनिधर्म या श्रावकधर्म होता है, सम्यग्दर्शनके बिना तो कोई धर्म होता नहीं, इसलिये सम्यग्दर्शनका उपदेश मुख्य है।

❀ मोक्षमार्गमें सम्यक्त्वकी प्रधानता ❀

'ज्ञानसमुच्चयसारकी १७५ वीं गाथामें श्री तारणस्वामी कहते हैं कि—

प्रथमं उपदेश सम्यक्त्वं शुद्ध धर्म सदा बुधैः ।
दर्शनज्ञानमयं शुद्धं सम्यक्त्वं शाश्वतं ध्रुवं ॥

बुद्धिमानोंको सदा ही प्रथम सम्यग्दर्शनका उपदेश करना चाहिये। शाश्वत ध्रुव दर्शन-ज्ञानमय आत्माकी श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। अपने हितके इच्छुक प्रत्येक जीवको श्रीगुरु प्रथम तो सम्यग्दर्शनका उपदेश देते हैं, आत्माका यथार्थ-स्वरूप क्या है उसे समझकर सम्यग्दर्शन प्रगट करना यह प्रथम कर्तव्य है, क्योंकि वही धर्मका मूल है। आत्माके भूतार्थ स्वभावके सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा करना निश्चय-सम्यग्दर्शन है। जहाँ ऐसा सम्यग्दर्शन प्रकाशमान होता है वहां मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञान और चारित्र सच्चे होते हैं। सम्यग्दर्शन होनेके साथ ही स्वसंवेदन-रूप सम्यग्ज्ञान तथा स्वरूपाचरणरूप चारित्र भी हो जाता है, इससे समन्तभद्रस्वामी रत्नकरंड श्रावकाचारमें कहते हैं कि—

दर्शनं ज्ञान चारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥

ज्ञान और चारित्रके पहले सम्यग्दर्शनकी उपासना की जाती है, क्योंकि सम्यग्दर्शन मोक्षमार्गमें कर्णधार है, नाविक है। जो रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है उसमें खेवटियाके समान सम्यग्दर्शन है। उसके अभावमें ज्ञान-चारित्रमें सम्यक्पना नहीं आता, इसलिये उसकी मुख्यता है। पं. दौलतरामजीने भी कहा है कि—

मोक्षमहलकी परथम सीढी या विन ज्ञान-चरित्रा ।
सम्यक्ता न लहे, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥

अतएव कहा है कि पहले सम्यग्दर्शनका उपदेश कर्तव्य है। विशेष पूज्य चारित्रदशा है, किन्तु उस चारित्र दशाका मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनके बिना चारित्र नहीं होता; इसलिये पहले सम्यग्दर्शनका उपदेश करना चाहिये। सम्यग्दर्शनके पश्चात् मुनिधर्मका उपदेश पहले देना और जिनसे मुनिपना न लिया जा सके उनको श्रावकधर्मका उपदेश देना-ऐसा पुरुषार्थसिद्धि-उपायमें उपदेशका क्रम कहा है। —किन्तु पहले सम्यग्दर्शन तो मुख्य रखनेकी बात है। सम्यग्दर्शनके बिना सीधा मुनिदशाका उपदेश दे देना ऐसा नहीं कहा। सम्यग्दर्शनका ठिकाना न हो और सीधा मुनिपनेका उपदेश देने लगे यह तो क्रमभंग उपदेश है। सम्यग्दर्शनके बिना तो व्रतादि शुभरागमें धर्मका आरोपण ही नहीं

आता। इसलिये पहले सम्यग्दर्शनकी मुख्यता है और उसका उपदेश सम्यग्दृष्टि देता है। किन्तु जिसको स्वयं सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्दर्शन क्या है और वह कैसे उत्पन्न होता है जिसको उसकी जानकारी भी नहीं, वह उसका यथार्थ उपदेश कहांसे देगा? सम्यग्दर्शनकी जिसमें प्रधानता न हो वह भगवानका उपदेश नहीं। भगवानने तो सम्यक्त्वकी प्रधानता-वाला उपदेश दिया है।

सम्यक्त्वके आचरणरूप चारित्र प्रथम चारित्र है।

चारित्रप्राभृतमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि रत्नत्रयकी शुद्धताके हेतु दो प्रकारका चारित्र है, वह दो प्रकार कौनसे हैं?

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरण चारित्तं
विदियं संजमचरणं जिण णाण संदेसियं तं पि॥ ५॥

प्रथम तो सम्यक्त्वके आचरणरूप चारित्र है-वह जिन-देवके ज्ञान-दर्शन-श्रद्धान द्वारा शुद्ध है। दूसरा संयमके आचरणरूप चारित्र है-वह भी जिनदेवके ज्ञान द्वारा दर्शाया गया शुद्ध है। सर्वज्ञ भगवानने तत्त्वका स्वरूप कहा है उसके ज्ञान-श्रद्धान पूर्वक निःशंकितादि गुण सहित जो शुद्ध सम्यग्-दर्शन प्रगटे उसका नाम सम्यक्त्वका आचरण है। ऐसे सम्यक्त्व पूर्वक संयमकी आराधना चारित्रका आचरण है।

ऐसे दोनों आचरण रत्नत्रयकी शुद्धिका कारण हैं। ऐसा जानकर क्या करना योग्य है?

एवं च्चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस सकाइ।
परिहरि सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त दो प्रकारके चारित्रको जानकर मिथ्यात्व, शंकादि दोष और उनके सम्यक्त्वको मलिन करनेवाले अतिचार दोषोंको त्रिविधि योगपूर्वक छोड़कर भगवान कथित सम्यक्त्वका आचरण करने योग्य है। उन दोषोंके दूर होनेसे निःशंकितादि अष्टगुण सहित सम्यक्त्व-आचरण प्रगट होता है। मोक्षमार्गका यह प्रथम आचरण है—

तं चेव गुणविसुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय।
तत् चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ॥ ८ ॥

निःशंकितादि गुणोंसे विशुद्ध ऐसा जो जिनसम्यक्त्व है, उसका यथार्थ ज्ञान सहित आचरण करना, सम्यक्त्व आचरण है, उत्तम मोक्षस्थानकी प्राप्ति हेतु प्रथम यह सम्यक्त्व-आचरण चारित्र है। इस भांति मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शनकी प्रधानता है।

ऐसे सम्यक्त्व-आचरण सहित जो विशुद्ध संयमका आचरण करता है वह अमूढ़दृष्टिवंत ज्ञानी अल्पकालमें निर्वाण प्राप्त करता है। किन्तु सम्यक्त्वके आचरणसे भ्रष्ट

अज्ञानी मूढ़ जीव व्रतादि शुभरागरूप संयमका आचरण करे तो भी निर्वाण नहीं पाता। मिथ्यात्वादि मोहका जिसको अभाव हो ऐसे जीवको ही त्रिभावरूप रत्नत्रयकी शुद्धता होती है और निजगुणकी आराधनाके कारण वह अल्पकालमें कर्मोंका परिहार करता है। इसप्रकार सम्यक्त्वका आचरण करनेवाले धीर पुरुष संख्यात-असंख्यातगुनी निर्जरा करके, संसारदुःखोंका क्षय करते हैं और मोक्षपद पाते हैं। अतएव ऐसे सम्यग्दर्शनकी आराधना करना जिनभगवानके उपदेशका सार है। चारित्रप्राभृतमें सम्यक्त्वका आचरण और संयम-आचरण इन दो प्रकारके चारित्रकी जो बात कही है वह बात श्री तारणस्वामीने भी श्रावकाचार गाथा २५४-२५५ में कही है। उन्होंने बारम्बार सम्यग्दर्शनकी प्रधानताका वर्णन किया है। भगवानका उपदेश 'सम्यक्त्वप्रधान उप-देश' कहलाता है। सम्यग्दर्शन स्वयं अपने अनुभवरूप है, सम्यग्दर्शनमें सहजरूप निजतत्व स्वयं अनुभवमें आता है, वह अनुभव स्वयंसे होता है, उसमें कोई अन्य अवलम्बन नहीं, विकल्प नहीं। वाह! देखो यह सम्यग्दर्शनकी महिमा! सम्यग्दर्शन होनेपर जगतकी सर्वोत्कृष्ट निधि प्राप्त हुई। बुद्धिमानोंको प्रथम उपदेश सम्यग्दर्शनका करना चाहिये। सम्यग्दर्शनके पहले व्रतादि नहीं होते। आत्मार्थी जीवोंको अपने हित हेतु पहले आत्माकी पहिचानका प्रयत्न करना तथा उसका उपदेश सुनना योग्य है। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्ध

आत्माको अनुभवमें लेकर उसमें एकाग्र होकर श्रावकधर्म अथवा मुनिधर्म होता है, बिना सम्यग्दर्शन मुनिधर्म अथवा श्रावकधर्म नहीं होता।

श्री तारणस्वामीके साहित्यमें शुद्ध सम्यक्त्वकी महिमा बारम्बार गायी गई है, सम्यग्दर्शनका सरस वर्णन किया है, सम्यक्त्व ही धर्मका मूल है, किन्तु लोग उसको भूलकर रागकी क्रियायोंमें और बाह्य क्रियाओंमें धर्म मान बैठे हैं। सामायिक कोई बाह्य क्रिया अथवा राग नहीं, किन्तु 'आत्माको परमात्माके समान अनुभव करना सामायिक है'।— 'सामायिकं च उक्तं अप्पा परमप्प सम्म संजुत्तं' ....

सम्यग्दर्शनके साथ ही धर्मीके जो निःशंकितादि आठ अंग हैं वही उसका चारित्र है, उसे सम्यक्त्वका आचरण कहते हैं—

१. जिनवाणीमें कथित वस्तुस्वरूपमें धर्मीको किञ्चित् भी शंका नहीं होती, यह निःशंकता अंग है। निःशंक होनेसे सात प्रकारके भयों द्वारा भी वह निजस्वरूपकी श्रद्धासे नहीं डिगता, इससे निर्भय है।

२. उसको भोगोंकी आकांक्षा नहीं, इससे निष्कांक्ष है।

३. धर्म और धर्मात्माओंके प्रति उसको ग्लानि नहीं इससे निर्विचिकित्स है।

४. देव-गुरु-धर्ममें अथवा वस्तुस्वरूपमें उसको मूढ़ता नहीं, इससे अमूढ़दृष्टिवन्त है।

५. धर्मात्माके दोषको गौण करके उपगूहन करता है और गुणकी वृद्धि करता है, इससे वह उपगूहन गुणसहित है।

६. अपने आपको तथा अन्य धर्मात्माओंको धर्मसे डिगने नहीं देता किन्तु धर्ममें स्थिर करता है, ऐसा स्थितिकरण अंग है।

७. रत्नत्रय धर्म और धर्मात्माओंके प्रति विशेष प्रीतिरूप वात्सल्य है।

८ अपनी शक्ति अनुसार धर्मकी महिमा प्रगट करके उसकी प्रभावना करता है।

अपने शुद्धात्माकी अनुभूति सहित ऐसे आठ अंगोंका पालन करना सम्यक्त्व-आचरण है। चौथे गुणस्थानमें धर्मीको ऐसे सम्यक्त्व-आचरणरूप प्रथम चारित्र होता है। उसके पश्चात् निजस्वरूपमें स्थिर होनेसे मुनिदशारूप वीतरागभाव खिले तब संयमके आचरणरूप दूसरा चारित्र होता है। ऐसे दोनों चारित्र मोक्षके कारण हैं। मुनिधर्म या कि श्रावकधर्म दोनोंमें सम्यग्दर्शन तो मुख्य ही होता है। वह सम्यग्दर्शन शाश्वत स्वभावके आश्रयसे हुआ है, सम्यग्दृष्टिके परिणाम शुद्ध ज्ञाताद्रष्टास्वभावमय होते हैं। शुद्धस्वभावके अनुभवका वारम्वार अभ्यास करनेसे ज्ञानमय शुद्ध आत्मा प्रगट होता है अर्थात् केवलज्ञान प्रगट होता है।

[१६]

सोलहवाँ प्रवचन

[वीर सं. २४८९ आश्विन शुक्ला ४]

❀

मोक्षके मार्गमें जीवका साथी कौन ?

श्री तारणस्वामीके 'उपदेश शुद्धसार' मेंसे यह गाथा पढ़ी जा रही है। धर्मी जीव अपने शुद्ध ज्ञानस्वभावको जानकर वारम्बार उसका अभ्यास करता है और उसका ही उपदेश देता है। यह बात गाथा ५०६में कल बताई थी; अब गाथा ५०७ तथा ५०८में कहते हैं कि- आत्मस्वभावके अनुभवरूप ज्ञान ही अमर मुक्तिपंथ है, वही केवलज्ञानका सहकारी है और वही कर्मक्षयका साधन है।—

अमरो विमुक्ति पंथं, अमराए मुक्ति ज्ञान सहकारं ।
साहंति ज्ञान अवयासं, साहंति विमल कम्म विलयंति ॥५०७॥

पोपंतु ज्ञानविज्ञानं, पोपंति विज्ञान कम्म खिपनं च ।
सिद्धंतु कम्म खिपनं, सिद्धंति कम्म तिविह मुक्तं च ॥५०८॥

श्री तारणस्वामीके मूल ग्रन्थोंकी भाषा-शैली पृथक् है, अतएव उसके शब्दार्थ स्पष्ट समझनेमें कठिनाई होती है,

किन्तु उनके कथनमें शुद्ध आत्माका अनुभव करनेकी और सम्यग्दर्शनकी प्रधानता भरी हुई है।

* अमर पन्थ *

यहाँ कहते हैं—मुक्तिका पंथ अमर है, और ऐसे अमर केवलज्ञानका वह सहकारी है, शुद्धज्ञानका वह साधन करता है, और उस विमल साधन द्वारा कर्मका क्षय होता है। ऐसे भेदज्ञानरूप विज्ञानका पालन करना चाहिये। त्रिकाल स्वभाव ध्रुव-अमर है; उस अमर स्वभावके अवलम्बनसे जो सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुआ जोकि पर्यायरूप है, मोक्षरूप है; किन्तु ऐसे अमर मोक्षका साधन होनेसे उसे भी अमर कहा जाता है। मरण रहित ऐसी अमर आत्मदशा मोक्ष है और उसका जो पन्थ वह अमरपन्थ है, आत्माकी जो शुद्धता हुई वह ज्योंकी त्यों निरंतर बनी रहेगी, इससे उसको अमरपद कहा है। मोक्षका दूसरा नाम 'अमृत' है। ऐसे मोक्षपन्थमें जीवका सहकारी कौन?-तो कहते हैं कि शुद्ध-ज्ञान जीवका सहकारी है। मोक्ष जानेके लिये शरीरकी क्रिया अथवा राग तेरा साथी नहीं, राग तो संसारका साथी है, मोक्षके हेतु वह साथी नहीं, मोक्षका साथी तो शुद्धज्ञान ही है। अन्तरस्वभावके अवलम्बनसे जो शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुआ वह पर्याय है, और पर्याय क्षणिक है, किन्तु ध्रुवके अवलम्बनसे जो शुद्धता हुई वह सदैव ज्योंकी त्यों रहेगी,

ध्रुवका नाश हो तो उसका नाश होगा। ध्रुवके साथ अभेद होकर जो भाव प्रगट हुआ वह ध्रुवके साथ सदैव ज्योंका त्यों बना रहेगा। इसलिये कहा है कि ध्रुवस्वभावके अवलम्बनसे जो ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ वह मोक्षका साथी है। ध्रुवस्वभावके अवलम्बनसे होनेवाली मोक्षगतिको ध्रुव (समयसार गाथा १ में) कहा है।

जिनोपदेश वीतरागभावका ही पोषक है

शुद्ध उपदेश अर्थात् सच्चा उपदेश, वीतरागी उपदेश कैसा होता है? उसका यह वर्णन चलता है। जिसमें ज्ञान-विज्ञानका पोषण हो, भेदविज्ञानका पालन हो, अर्थात् जड़-चेतनको जो भिन्न पहिचाने, रागको और शुद्धताको जो भिन्न जाने, ऐसा भेदज्ञान कराके आत्माकी शुद्धताका अनुभव कराना वह शुद्ध उपदेश है, वह जिनोपदेश है। ऐसा भेद-ज्ञान और ऐसा अनुभव करे तभी जिनोपदेशको यथार्थ समझा कहलायेगा। रागसे जो धर्म माने, जड़की क्रियाको जीवकी क्रिया माने, उसने यथार्थमें जिनोपदेशको समझा ही नहीं।

चौथे गुणस्थानमें वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रके प्रति भक्ति-पूजाका शुभराग आये, श्रावकको भी देशव्रत या पूजादिका भाव आये, तथा मुनिको पंचमहाव्रतादि सम्बन्धी शुभराग आये किन्तु उस समय उस रागसे भिन्न होकर जितनी वीतरागी शुद्धता हुई है उतना ही सच्चा मोक्षमार्ग है, और

वही पोषण करने योग्य है; जो राग रहा, वह पोषण करने योग्य नहीं। जिससे कर्मोंका क्षय हो और सिद्धपद तक जो साथ दे ऐसा वीतरागी ज्ञान ही सेवन करने योग्य है, वह पोषण करने योग्य है।

भूमिका अनुसार जीवकी पर्यायमें राग हो वह अलग बात है, उसका अस्तित्व ही सर्वथा न माने तो ज्ञान मिथ्या पड़ता है। और यदि उस रागको पोषण करने योग्य माने, उस राग द्वारा वीतरागताका कार्य करना चाहे अथवा उसको मोक्षका साधन माने तो उसमें भी मिथ्यात्व हो जाता है। रागके समय उस रागसे परे शुद्ध ज्ञानस्वभाव विद्यमान है, उस स्वभावका और रागका भेदविज्ञान करना चाहिये। जो ऐसा भेदज्ञान न करे तो एकान्त मिथ्यात्व हो जाता है। राग आत्माकी पर्यायमें है किन्तु वह शुद्धात्माका साधन नहीं।

आत्मामें 'करण' नामक एक ऐसा स्वभाव है कि जिससे वह अपने स्वभावको ही अपनी शुद्धताका साधन बनाता है, और भिन्न साधनकी अपेक्षा नहीं रखता। रागमें ऐसी करणशक्ति नहीं जो आत्माकी शुद्धताका साधन बने। अन्तर्मुख होकर स्वभावको अनुभवमें लेनेसे वह स्वभाव स्वयं साधनरूप होकर शुद्धज्ञानादिका साधन करता है, और तीन प्रकारके कर्म छूट जाते हैं। इसप्रकार रागरहित शुद्ध-ज्ञान ही मोक्षका सहकारी है, वही मोक्षका साधन है,

और वही जिनोपदेशका तात्पर्य है। यह शुद्धज्ञान विकल्प-रहित है।

❀ शुद्धज्ञान सविकल्प है या निर्विकल्प है? ❀

ज्ञानको क्या सविकल्प कहा है?—हां, कहा है, किन्तु उसमें 'सविकल्प'का अर्थ 'रागवाला' नहीं, किन्तु स्व और पर ऐसे समस्त पदार्थोंको विशेषरूपसे जाननेकी उसमें शक्ति है उस अपेक्षासे उसको 'सविकल्प' कहा है।—ऐसी स्व-परको जाननेकी शक्ति ज्ञानके अतिरिक्त अन्य किसीमें नहीं, ज्ञानमें ही ऐसी शक्ति है इसलिये उसको सविकल्प कहा; ऐसा सविकल्पपना तो केवलज्ञानमें भी लागू है।—रागरूप विकल्प उसमें नहीं, परन्तु स्व और पर दोनोंके भेद सहित जाननेकी विशेष सामर्थ्य उसमें है इससे उसे सविकल्प कहा है। अनुभवदशामें छद्मस्थ जीवको ज्ञानका उपयोग परसन्मुख नहीं होता, किन्तु उस समय ज्ञानके स्वसंवेदनके पश्चात् आनन्द आदिका ज्ञान भी उस अभेद अनुभवमें समा जाता है। आत्माका ऐसा कोई अचिंत्य स्वभाव है। ऐसे चिदानंद-स्वभावको भली प्रकार सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञानकी सहायतासे देखना, जानना, अनुभव करना मोक्षमार्ग है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी सहायता पूर्वक चारित्र प्रगट होता है, रागकी सहायतासे चारित्र प्रगट नहीं होता, उसके तो अभाव द्वारा ही चारित्र प्रगट होता है।

❀ निश्चय और व्यवहार ❀

आत्माके सूक्ष्म वीतरागी स्वभावकी यह बात है। शुद्ध आत्माके श्रद्धा-ज्ञान पूर्वक उसमें निर्विकल्प रमणता करके अतीन्द्रिय आनन्दका प्रचुर अनुभव करना निश्चयचारित्र है, और वह मोक्षका वास्तविक साधन है। उसके साथ कषायका लेशमात्र भी कोई शुभराग शेष रहे उसको उपचारसे व्यवहारचारित्र कहते हैं, किन्तु मोक्षका वह यथार्थ साधन नहीं। उस कालका वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है किन्तु वह आदर करने योग्य नहीं। अभी साधक भूमिका होनेसे उसका सर्वथा अभाव नहीं हुआ, पर्यायमें उसका अस्तित्व है- ऐसा जानना चाहिये, परन्तु शुद्ध स्वभावके अनुभवमें तो उसका अभाव ही है इसलिये वह अभूतार्थ है। यह जैनधर्मका रहस्य है, और ऐसा अनुभव करना सम्यग्दर्शन है।

मोक्षमार्गमें साधकको निश्चय और व्यवहार दोनों चारित्रोंका संयोग है, दोनों साथ रहनेवाले हैं। ऐसा निश्चय-व्यवहार अज्ञानीको नहीं होता, तथा केवलीको जहां निश्चयचारित्रकी शुद्धता पूरी हो गई वहा व्यवहार रहा नहीं। साधकको दोनों साथ होते हैं, उसमें भी निश्चयचारित्ररूप वीतरागभाव ही मोक्षका कारण है और व्यवहार चारित्ररूप रागभाव तो पुण्यबन्धका कारण है,— इस-

प्रकार धर्मीको सर्वत्र निश्चय-व्यवहारका विवेक वर्तता है। अन्तर्मुख होकर जब शुद्ध स्वभावका अनुभव किया तब तो चौथा गुणस्थान हुआ और निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगटा। उसके पश्चात् स्वरूपमें लीनतासे जैसे-जैसे वीतरागता बढ़ती जाती है वैसे-वैसे गुणस्थान चढ़ता जाता है। स्वरूपमें लीनतासे जितनी शुद्धता हुई उतना निश्चयचारित्र है, उस भिकामें रहनेवाले मनादि शुभ विकल्पको चारित्र कहना व्यवहार है। यह व्यवहारचारित्र पुण्यबन्धका कारण है, निश्चयचारित्र संवर-निर्जरा तथा मोक्षका कारण है। भूमिकाके अनुसार यह दोनों साथ होते हैं।

❀ जागे तभी सवेरा ❀

ऐसा तत्त्वका स्वरूप अज्ञानके कारण जीव कभी नहीं समझा, पर अब समझना चाहे तब ज्ञानसे ही समझ सकता है, —जागे तभी सवेरा। समझनेकी शक्ति उसमें भरी है। यह स्वयं जागृत होकर जब समझेगा तब पहली बार ही समझेगा न? तीर्थंकर होनेवाले जीव भी पूर्वमें जबतक स्वरूपे तत्त्वको नहीं समझे थे तभी तक संसार-भ्रमण करते थे, पश्चात् उन्होंने स्वरूपे तत्त्वको समझकर भेदज्ञानके बलसे भव पार किया और ऐसा ही भेदज्ञानका जगतके जीवोंको उपदेश दिया। उसकी यह बात है।

* मोक्षके हेतु मुमुक्षुकी झंकार *

जीवको अपने हितके लिये अन्तरसे सत् समझनेकी जिज्ञासा जागृत होना चाहिये। कुछ गरीब लोग गायें चराते थे, एकबार जब राजाने राजगद्दीके लिये बुलाकर उनसे पूछा कि कैसे आये हो? तब उनमेंसे एक पुण्यवान बालकने तुरन्त उत्तर दिया कि हम राज लेने आये हैं।–और राजाने उसको बड़ौदाका राज्य सौंप दिया। अन्तरसे उसको ऐसी पुण्यकी झंकार आई। उसी भांति मुमुक्षु जीवसे कोई पूछे कि ज्ञानीके पास तुम क्यों आये हो?– तो उस मुमुक्षु जीवको अन्तरसे आत्माकी पवित्रताकी झंकार आती है कि हम हमारा केवलज्ञानका राज्य लेनेके लिये आये हैं। हमारे स्वभावकी बात हम बराबर समझेंगे और आत्मामेंसे मोक्ष-पदका राज्य प्रगट करेंगे—ऐसी अन्तरसे पात्रताकी झंकार आती है। और ऐसा मुमुक्षु जीव अल्पकालमें अपना केवल-ज्ञान राज्य प्राप्त करता है।

अन्य गायोंके चरानेवालोंने तो राजाको ऐसा उत्तर दिया कि 'हमको किसलिये बुलाया गया है उसकी जानकारी नहीं; आपने बुलाया इसलिये हम आये।' राजाने उत्तरसे देख लिया कि इनमें राज्य चलानेकी शक्ति नहीं। उसीप्रकार पहलेसे ही जो ऐसा रोना रोता है कि 'हमको आत्माकी बात समझमें नहीं आती!' तो ज्ञानी कहते हैं कि इसमें अभी मोक्षका

राज्य लेनेकी तैयारी नहीं। मोक्षकी तैयारी वाले जीवको तो अन्तरसे ललकार आती है कि मोक्षके लिये हम आत्माका स्वरूप समझने आये हैं, और स्वरूपका अनुभव करके मोक्ष लेना ही है। मोक्षके हेतु हम जागृत हुये हैं और हमारा आतमस्वरूप हम न समझ सकें ऐसा ही नहीं हो सकता। इस-प्रकार मुमुक्षु जीव आत्माके लिये उल्लसित वीर्यवान होता है।

परमात्माके साथ मिलते ही सिद्धपदकी प्राप्ति

'ममलपाहुड़' (भाग ३, पृष्ठ २२९) में श्री तारणस्वामी कहते हैं कि परमात्माके स्वभावसे मेल किया जाता है तब अपना स्वभाव भीतरसे खिचकर प्रगट होते होते जिनेन्द्ररूप हो जाता है! मोक्ष जानेवाले व सिद्धस्वभावमें रमण करने-वाले जिनेन्द्रकी जय हो। जैसे सिद्ध परमात्मा हैं वैसा ही मैं हूं— ऐसी अनुभूतिसे जहां परमात्माके स्वभावके साथ मिलन किया, परमात्माके साथ अपने आत्माका मेल किया अर्थात् अन्तरमें स्वभावसन्मुख एकाग्र होकर परिणमन किया वहां भीतरसे अपना स्वभाव खिच-खिचकर पर्यायमें प्रगट होता है— शक्ति उमड़ उमड़कर पर्यायमें व्यक्त होने लगती है, इसप्रकार स्वभावमेंसे खिचकर पर्यायमें प्रगट होते होते जिनेन्द्ररूप दशा हो जाती है अर्थात् केवलज्ञानरूप सर्वज्ञ-पद प्रगट होता है। ऐसा कहनेके पश्चात् आनन्दसे कहते हैं कि— अहो! इस प्रकार परमात्माके साथ मिलन करके मोक्ष-

में जानेवाले और सिद्धस्वभावमें रमण करने वाले जिनेन्द्रकी जय हो!

जै जै मेल समय खेंचे उवन जिना,
जै जै मुक्ति गमन जिन सिद्धि रमना।

देखो, अपनी शक्तिमें जो स्वभाव भरा है उसके साथ मिलन करनेसे (उसकी श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रता करनेसे) शक्ति पर्यायमें प्रगट होती है। परमात्मपद बाहरसे नहीं आता, परन्तु शक्तिमें भरा है वही खिंचकर अर्थात् परिणमन होकर प्रगट होता है। ऐसी दशा प्रगट करनेवाले जिनेन्द्रदेवकी जय हो! और हमें भी स्वभावके साथ मिलन करके इसी मार्ग पर आना चाहिये। स्वभावशक्तिमें दृष्टि देनेसे परमात्म-दशाका अवतार होता है, रागमेंसे परमात्मपना नहीं आता। हमारा आत्मा, हमारा सिद्धपद हमारेमें ही है, बाहर नहीं, —ऐसा अन्तर्अनुभव करते करते आत्मा स्वयं जिनवर-सिद्ध हो जाता है। इस भांति मोक्ष जानेवाले सिद्धोंकी जय हो जिनवरोंकी जय हो!

साधक कहता है कि हमने अपने परमात्मस्वभावका अवलम्बन लिया है, अब हमारा आत्मा सिद्ध हो गया, अब हमारा आत्मा संसारमें डूबेगा नहीं। एक बार २०० जहाज माल भरकर आ रहे थे, उसमें एक पुण्यवान सेठके भी दो जहाज थे। आते आते समुद्रके तूफानमें १९८ जहाज तो डूबे गये केवल २ रह गये। सेठको जब इस बातकी खबर

मिली तो विश्वासपूर्वक उसने कहा कि जो दो जहाज बचे हैं वह ही हमारे हैं; डूबे हैं वह दूसरोंके, हमारे जहाज डूबेंगे नहीं, क्योंकि हमारा पुण्य प्रतापी है, और हमारे पुण्य-में कहीं खोट नहीं पड़ी, इसलिये हमारे जहाज डूबेंगे नहीं। इस भांति पुण्यवंत सेठको अपने पुण्यका विश्वास था। (और सचमुच जो दो जहाज बचे थे वे उसके ही थे) उसीप्रकार यहां परमात्मस्वभावके विश्वासके जोर पर साधक-धर्मात्मा कहता है कि हम अब संसार-समुद्रसे तरकर मोक्षमें जा रहे हैं, हमारे आत्माका जहाज अब संसारमें डूबेगा नहीं। स्वभावके श्रद्धा-ज्ञानसे हमें तो तरना ही है। दुनिया भले ही डूबे, पर हमें श्रद्धा-ज्ञानके बलसे केवलज्ञान लेना है और मोक्षमें जाना है।

❀ समझनेका उल्लास ❀

भाई, यह तेरी ही बात है, तुझे समझानेकी बात है, तेरे सम्पूर्ण हितकी बात है। यदि समझमें न आये तो उपदेश किसलिये देते हैं?-इसलिये उत्साहसे समझ। स्वभावके उल्लासपूर्वक समझेगा तो अवश्य समझमें आ-जायगी, परन्तु पहलेसे ही 'मेरी समझमें नहीं आती'—ऐसा कायर होकर समझे और समझनेका उल्लास ही न करे तो उसे कहांसे समझमें आयगी?

ॐ अर्थात् शुद्धआत्मा, अर्थात् अरिहन्तकी अखंड वाणी

ॐ सर्वज्ञ भगवानकी वाणी है; और उसका वाच्य शुद्ध-आत्मा है। आत्मा सर्वज्ञ हो जाय और पश्चात् अर्हंतदशामें उसको वाणीका योग हो तो वह वाणी भेदवाली अथवा क्रम-वाली नहीं होती, ओठोंके हिलनेसे वह वाणी नहीं निकलती किन्तु सर्वांगसे वाणीकी अखंड झंकार उठती है। राग टूटकर ज्ञान अभेद हुआ वहाँ वाणीमें भी भेद नहीं रहा, ज्ञानमें क्रम नही रहा और वाणीमें भी क्रम नहीं रहा, दोनों अक्रम हो गये; ज्ञान अखण्ड हो गया, वाणी भी अखण्ड हुई, उसको 'ॐ' कहते हैं और उसका वाच्य शुद्ध आत्मा है। प. बनारसीदासजीने भगवानके १००८ नामोंमें 'प्रथम ओंकार-रूप ' ऐसा कहकर पहला ही नाम ॐ कहा है।

निश्चयधर्म अर्थात् आत्माकी शुद्धि

शुद्ध आत्माके ध्यानसे जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तभी निश्चय और व्यवहार दोनों सच्चे होते हैं। अज्ञानीको मोक्षमार्गका निश्चय अथवा व्यवहार एकका भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। मोक्षमार्गका निश्चय और व्यवहार सम्यग्दृष्टिको ही होता है, मुनिदशामें मुनिके योग्य निश्चय-व्यवहार दोनों साथ होते हैं। दोनों साथ होते हुए भी शुद्ध ज्ञानस्वभावके आश्रयसे जो निश्चयदशा प्रगटी और जितनी शुद्धता हुई वही मोक्षका कारण है। अर्थात् दोनों नयोंको जानकर भी ज्ञान-स्वभावका आश्रय करना ही तात्पर्य है।

निश्चयसे ब्रह्मचर्य, सामायिक आदि भी आत्मस्वरूपमें रमणतासे होते हैं, यह बात श्री तारणस्वामीने भी कई स्थानों पर बताई है। ज्ञानसमुच्चयसार गाथा ३५९ में कहते हैं कि आत्मा ब्रह्मस्वभावी है, उसको जानकर आनंदपूर्वक निश्चय-व्यवहार चारित्रका आचरण करना और आत्माके स्वभावमें रमण करना ब्रह्मचर्य-अणुव्रत है। उस अणुव्रती श्रावकको कुशील भावोंसे विरक्ति है और स्वभावमें चरनेका अभ्यास है, शुद्धात्माका मनन है। श्रावकको भी शुद्धात्माका अनुभव करनेवाला कहा है। अपने स्वरूपको रागादिसे भिन्न जानकर उसमें स्थिर होना ही समभावरूप वीतरागी सामायिक है। गाथा २९० आदिमें कहते हैं कि श्रावकको जल छाननेका उपदेश है, परन्तु सम्यग्दर्शन विना मात्र पानी छानकर पोनेसे कहीं श्रावकदशा नहीं हो जाती, सम्यक् चेतना परिणामरूपी जलको शुद्ध रखना और उसमें परभावका प्रवेश न होने देना परमार्थ जल छानना है। इसी प्रकार रात्रि-भोजन त्याग आदिमें भी जानना। सम्यग्दर्शन विना रात्रिभोजन-त्याग आदि शुभरागसे आत्मशुद्धि नहीं होती या श्रावकपना नहीं होता। जो शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं, वीतरागी देव-गुरु-शास्त्रके मार्ग पर चलने वाले हैं उनके ही परिणामकी विशेष शुद्धिसे व्रतोंकी सफलता है।

* सम्यक्त्वको साथी बनाओ *

श्री तारणस्वामी श्रावकाचार गाथा २९६ में कहते हैं कि- मिथ्यात्व परम दुःख है और सम्यक्त्व परम सुख है,

ऐसा जानकर मिथ्यादर्शनको छोड़ो और शुद्ध सम्यग्दर्शनको अपना साथी बनाओ।

मिथ्यात्व परमं दुखं सम्यक्त्वं परमं सुखं।
तत्र मिथ्यामतं त्यक्तं, शुद्ध सम्यक्त्व सार्द्धयं॥

सुखके लिये ऐसे सम्यक्त्वका अभ्यास करने योग्य है। बाहरका उलटा अभ्यास होगया उसको छोड़कर शुद्धआत्माकी पहिचानके लिये उसका अभ्यास करना चाहिये। देहकी, परिवारकी सँभालके लिये कितना ध्यान रखता है? तो आत्माका हित करनेके लिये उसका अभ्यास करके अपनी आत्म-पर्यायकी सँभाल करना चाहिये। आत्माका परम-स्वभाव पिता और निर्मल पर्यायें उसकी प्रजा, ऐसे शुद्ध-आत्माको परसे भिन्न पहिचानकर उसकी बारम्बार भावना करने योग्य है।

जीवरक्षाके विषयमें गाथा ३०५ में कहते हैं कि शुद्ध-दृष्टिवंत श्रावकको शुद्धात्माकी भावना होती है, और षट्काय जीवोंकी रक्षाके लिये वह प्रासुक जल काममें लेता है। सम्यग्दृष्टि श्रावकको जीवरक्षाका ऐसा शुभभाव होता है, किन्तु उसमें जो राग है उसको वह कर्तव्य नहीं मानता। परकी पर्यायको तो आत्मा करता नहीं, परकी रक्षाका भाव शुभराग है। और रागादि भावोंसे जीवके उपयोगका हनन नहीं करना और शुद्धात्माके अनुभवसे सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्रका पोषण करना यह परमार्थसे रक्षारूप धर्म है।

शुद्धात्माका उपदेश समझना....समझकर अनुभव करना

श्री तारणस्वामीने उपदेश शुद्धसारमें ४९२ से ५१९ वीं गाथा तक मोक्षमार्ग अधिकार कहा है, वह पढ़ा जा रहा है, उसमें गाथा ५०९ में कहते हैं कि—

'गमस्य अगमं दिष्टं . ' गम्य-जोकि मन-वचन-कायसे अगम्य है ऐसे अनन्त स्वभावरूप आत्माको देखना तथा अनुभव करना चाहिये। उसमें मोक्षमार्गको समझना और समझकर ज्ञानस्वभावी आत्मामें लीन होना, जिससे कर्मोंका क्षय हो जाय।

आत्मा अनंत स्वभावोंसे भरा है, वह मनसे अथवा विकल्पोंसे अगोचर है, परन्तु ज्ञान द्वारा गम्य है। उसीका अनुभव करने योग्य है। श्रीगुरुके पाससे मोक्षमार्ग समझने जैसा है। इसमें दो बातें कही हैं- एक तो 'समझने'को कहा अर्थात् उसे समझानेवाले ज्ञानीकी देशनालब्धिकी बात कही और दूसरा 'मोक्षमार्ग' समझना ऐसा कहा अर्थात् शिष्यको रागकी अथवा संसारकी बात समझनेका उत्साह नहीं, परन्तु आत्माकी मुक्ति कैसे हो उसे समझनेका उत्साह है। समझनेवाला शिष्य मोक्षमार्ग ही समझना चाहता है और श्रीगुरु भी यही बात समझाते हैं, ऐसी दोनोंकी संधि है।

अहा, शुद्धात्माकी बात तो गणधरदेव भी तीर्थंकरके श्रीमुखसे समझते हैं और प्रतिक्षण अंतरमें उसका अनुभव करते

हैं। समझनेके साथ श्रवणका विकल्प तो है, पर समझकर क्या करना ?– विकल्पमें न अटकना, उससे भिन्न ज्ञानस्वरूपका अनुभव करना। समझानेमें भी ऐसा ही आया है कि 'तेरा आत्मा विकल्पसे भिन्न ज्ञानस्वभावी है, उसको जान'।–ऐसे आत्माको लक्षमें ले तो ही यथार्थ समझना कहलायेगा। ज्ञानियोंने जैसा कहा शिष्यने वैसा किया, तभी सच्चा ज्ञान हुआ। ऐसा सच्चा ज्ञान मोक्षके मार्गमें जीवका साथी है।

समयसारकी पांचवीं गाथामें श्री कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि मैं इस समयसारमें मेरे समस्त आत्मवैभवसे एकत्व-विभक्त शुद्धआत्मा दिखाता हूं, मैं दिखाऊँ उसीप्रकारसे तुम अपने स्वानुभवसे प्रमाण करना। शब्दोंकी ओर देखकर नहीं अटकना किन्तु शुद्धात्माका जो भाव मैं कहना चाहता हूं उसे लक्षमें लेकर तुम अनुभव करना। श्रवणके समय विकल्प भले हो, पर वाच्यरूप जो शुद्धआत्मा है उसकी ओर ज्ञानको झुकाना। स्वभावकी ओरके झुकावसे सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप मोक्षमार्ग होगा।

इति द्वितीय अष्टप्रवचन समाप्त

गुरु उपदेश सों पायके अष्ट प्रवचन आज,
सम्यग्दर्शन-ज्ञान है तारनतरन जहाज।
अष्ट प्रवचन कहानके दर्शावें भगवान,
भक्त हरि वो झेलके हो जाते भवपार।

परिशिष्ट–१

सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी रीति
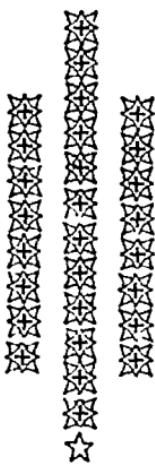
समयसार गाथा १४४ के
प्रवचनोंसे

❀

सम्यग्दर्शनके लिये उद्यम करनेवाले मुमुक्षु जीव पहले तो ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करते हैं, उसके पश्चात उसकी प्रगट प्रसिद्धि अर्थात् साक्षात् अनुभव किसप्रकारसे करते हैं, यह समझाते हुये आचार्यदेवने सम्यग्दर्शन कराया है ।

जो जीव जिज्ञासु होकर स्वभाव समझने आये हैं वे सुख लेने और दुःख टालने आए हैं। सुख अपना स्वभाव है, और जो दुःख है वह क्षणिक विकृति है इससे वह टल सकता है। वर्तमान दुःख-अवस्था टालकर सुखरूप अवस्था स्वयं प्रगट की जा सकती है, इतना तो जो सत् समझने आये उन्होंने स्वीकार ही कर लिया है। आत्माके निजभावमे ज्ञानका पुरुषार्थ करके विकार रहित ज्ञानस्वरूपका निर्णय करना चाहिये। पर्यायमें वर्तमान विकार होने पर भी विकार रहित स्वभावकी श्रद्धा की जा सकती है, अर्थात् इस विकार और दुःखसे रहित मेरा स्वरूप सुखमय है ऐसा निश्चय करके सुखका अनुभव हो सकता है।

❊ पात्र जीवका लक्षण ❊

जिज्ञासु जीवोको स्वरूप प्रगट करने हेतु प्रथम ही सत्समागमरूप ज्ञानक्रिया शास्त्रोमे बताई है, अर्थात् श्रुतज्ञानसे

आत्माका निर्णय करनेको कहा है। कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रका आदर तथा उस ओरकी वृत्ति तो जिज्ञासुकी छूट ही जाती है, तथा विषयादि परवस्तुमे सुखबुद्धि टल जाती है, सभी ओरसे रुचि हटकर अपनी ओर रुचिका लगाव होता है और देव-गुरु-शास्त्रको यथार्थरूपसे पहिचानकर उनका आदर करता है, तथा उनके बताये हुये ज्ञानस्वभावका निर्णय करता है,-यह सब 'स्वभावके लक्षसे' हुआ हो तो उस जीवको पात्रता हुई कहलायगी। इतनी पात्रता अभी साक्षात् सम्यग्दर्शन नही, सम्यग्दर्शन तो चैतन्यस्वभावमे उपयोग लगाकर निर्विकल्प प्रतीति करना है। ऐसे सम्यग्दर्शनको प्रगट करनेके लिये पात्र जीवोको क्या करना है वह इस समयसारमे स्पष्ट बताया है।

*** सम्यग्दर्शनके हेतु समयसारमें बताई गई क्रिया अर्थात् ज्ञानक्रिया ***

प्रथम श्रुतज्ञानके अवलबनसे ज्ञानस्वभावी आत्मा का निश्चय करके, पश्चात् आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके हेतु, पर पदार्थोंकी प्रसिद्धिके जो कारण इन्द्रियो और मन द्वारा प्रवर्तती बुद्धिया हैं-उनको मर्यादामे लाकर मतिज्ञान तत्त्वको आत्मसन्मुख करना, तथा अनेक प्रकारके पक्षोके अवलबनसे हुए विकल्पो द्वारा आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञानकी बुद्धियोको भी मर्यादामे लाते हुये श्रुतज्ञान तत्त्वको भी आत्म-सन्मुख करना। इस भाति जीव जब ज्ञानको विकल्पसे भिन्न करके आत्म-सन्मुख करता

है उस समय वह अत्यत विकल्प रहित होकर, तत्काल परमात्मा-रूप समयसारका अनुभव करता है, और उसी समय 'आत्मा' सम्यक्‌रूपमे दिखता है (अर्थात् श्रद्धा होती है) तथा जाना जाता है । इससे समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। (समयसार गाथा–१४४ टीका) उसका यह स्पष्टीकरण है ।

श्रुतज्ञान किसको कहते हैं? श्रुतका लक्षण अनेकांत

" प्रथम श्रुतज्ञानके अवलबनसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करना " ऐसा कहा है । श्रुतज्ञान किसको कहते हैं ? सर्वज्ञ भगवान कथित श्रुतज्ञान अस्ति–नास्ति द्वारा वस्तुस्वरूप को सिद्ध करता है 'अनेकान्तस्वरूप वस्तु स्व–रूपसे है पर-रूपसे नही । ऐसा जो वस्तुको स्वतत्र सिद्ध करता है वह श्रुतज्ञान है।

एक वस्तु अपनेपन (स्व–रूप)से है और वह वस्तु अनत पर द्रव्योसे छूटी है, ऐसी परसे भिन्नता बताते हुए स्वकी ओर लग जानेको बताता है–वह श्रुतज्ञानका लक्षण है । वस्तु स्व–रूपसे है सौर पर–रूपसे नही–ऐसा कहकर श्रुतज्ञानने वस्तुकी परिपूर्णता सिद्ध की है, और स्वाश्रय करनेको वताया है । श्रुत-ज्ञानके बताये हुये ऐसे स्वरूपको समझकर ज्ञानस्वभावका निश्चय करना चाहिये ।

ज्ञानस्वभावी मेरा आत्मा अनन्त परवस्तुओसे भिन्न है, ऐसा साबित होनेपर अपने द्रव्य–पर्यायमे देखना आया । मेरा त्रिकाली द्रव्य एक समयके-विकार जितना नही, अर्थात् विकार

क्षणिक पर्यायरूपसे है परन्तु त्रिकाली स्वरूपसे विकार नही, ऐसे विकार रहित ज्ञानस्वभावकी सिद्धि भी अनेकांतसे ही होती है। भगवान कथित सत्‌शास्त्रोकी महत्ता अनेकातसे ही है, वह ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय कराता है। सर्वज्ञ भगवानने भी अपना ही कार्य पूरा किया परन्तु दूसरोंका कुछ किया नही, क्योकि यह तत्त्व अपनेपनसे है और पररूपसे नही, इससे वह किसी भी दूसरेका कुछ कर सकता नही। प्रत्येक द्रव्य पृथक् पृथक् स्वतंत्र है, कोई किसीका कुछ कर सकता नही—ऐसा जानना ही भगवानके शास्त्रकी पहिचान है, वही श्रुतज्ञान है। यह तो अभी स्वरूपको समझनेवालेकी पात्रता कहलाती है।

जैनधर्म अर्थात् आत्माका वीतरागस्वभाव, उसकी प्रभावना धर्मी जीव करते हैं। आत्माको जाने बिना आत्माके स्वभावकी वृद्धिरूप प्रभावना किस भाति हो सकती है? प्रभावना करनेका विकल्प उठे वह भी परके कारण नही। दूसरेके लिये कुछ भी अपनेमें हो ऐसा कहना जैन-शासनकी मर्यादामे नही। जैन-शासन तो वस्तुको स्वतत्र स्वाधीन परिपूर्ण स्थापित करता है।

आत्माके स्वभावको पहिचानकर कषायभावसे अपने आत्माको बचाना—ऐसा करनेको भगवानने कहा है, यही यथार्थ उपदेश दिया है। जीव निज आत्माका निर्णय किये बिना क्या करेगा? भगवानके श्रुतज्ञानमें तो ऐसा कहा है—तुम अपनेसे परिपूर्ण वस्तु हो। प्रत्येक तत्त्व स्वयसे ही स्वतत्र है, किसी तत्त्वको अन्य तत्त्वोका आश्रय नही। इस प्रकार वस्तुके स्वरूपको स्पष्ट

समझकर स्व-आश्रयसे वीतरागभाव प्रगट करना अहिंसा है, और एक दूसरेका कुछ कर सकता है इसप्रकार वस्तुको पराधीन मानकर कर्तृत्वबुद्धि और रागद्वेष करना हिंसा है।

आनन्द प्रगटानेकी भावनावाले क्या करें?

जगतमे जीव सुख चाहते हैं, सुख कहो या धर्म कहो। धर्म करना अर्थात् आत्मशाति प्रगट करना, आत्माकी अवस्थामें दुःखका नाश करके वीतरागी आनद प्रगट करना है। यह आनद ऐसा चाहिये कि जो स्वाधीन हो, जिसके लिये परका अवलवन न हो। ऐसा आनद प्रगट करनेकी जिसको यथार्थ भावना हो वह जिज्ञासु कहलाता है। अपना पूर्णान्द प्रगट करनेकी भावना वाला जिज्ञासु पहले यह देखता है कि ऐसा पूर्णानद किसको प्रगटा है? और किस प्रकार प्रगटा है। अपनेको अभी वैसा आनद प्रगट नही, क्योकि जो अपनेको वैसा आनद प्रगट हो तो प्रगटानेकी भावना नही होगी। इसलिये अपनेको अभी वैसा आनद प्रगटा नही, किन्तु अपनेको जिसकी भावना है वैसा आनद दूसरे किसीको प्रगटा है, और जिसको वह आनद प्रगटा है उसके पाससे स्वय वह आनद प्रगट करनेका सच्चा मार्ग जानना चाहता है। इसलिये इसमे सच्चे निमित्तोकी पहिचान और अपनी पात्रता दोनो आ गये। इतना करे तव तक अभी जिज्ञासु है।

अपनी अवस्थामे अधर्म-अशाति है, वह टालकर धर्म-शाति

प्रगट करना है। वह शाति अपने आधारसे और परिपूर्ण चाहिये, ऐसी जिसको जिज्ञासा हो वह प्रथम ऐसा तय करता है कि मैं एक आत्मा अपना परिपूर्ण सुख प्रगट करना चाहता हूँ, तो वैसा परिपूर्ण सुख किसीको प्रगट हुआ होना चाहिये, जो परिपूर्ण सुख-आनंद प्रगट न हो तो दु खी कहा जायगा। जिसको परिपूर्ण और स्वाधीन आनद प्रगट हुआ हो वही सम्पूर्ण सुखी है, वह सर्वज्ञ है। इस भाति जिज्ञासु अपने ज्ञानमे सर्वज्ञका निर्णय करता है। परन्तु करने-छोडनेकी तो बात है ही नही, ज्यो ही परसे थोडा छुटकारा मिला त्यो ही आत्माकी जिज्ञासा हुई है। यह तो परसे छुटकारेकी और अव जिसको अपना हित करनेकी आतुरता जागृत हुई है ऐसे जिज्ञासु जीवकी बात है, पर द्रव्यके प्रति सुखबुद्धि और रुचि टालकर स्वभावकी रुचि करनेकी बात है।

दु खका मूल भूल है। जिसने अपनी भूलसे दु:ख उत्पन्न किया है वह अपनी भूल टाले तो उसका दु ख टले....अन्य किसीने यह भूल की नही इससे अन्य कोई अपना दु:ख टालनेमें समर्थ नही। अपनी भूल टालनेके लिये अर्थात् सम्यग्दर्शन करनेके लिये पात्र जीवोको पहिले क्या करना चाहिये ? वह कहते हैं।

श्रुतज्ञानका अवलंबन-यही पहली क्रिया

जो आत्मकल्याण करनेको उद्यत हुआ है ऐसे जिज्ञासुको उद्यमसे अपने ज्ञानस्वभावका निर्णय करना है। ऐसे ही आत्म-

कल्याण नहीं हो जाता, परन्तु अपने ज्ञानमे रुचि और पुरुषार्थसे आत्म-कल्याण होता है । अपना कल्याण करनेके लिये, जिनको पूर्ण कल्याण प्रगट हुआ वे कौन हैं, वे क्या कहते हैं, उन्होने पहले क्या किया था-इसका अपने ज्ञानमें निर्णय करना पडेगा, अर्थात् सर्वज्ञका स्वरूप जानकर उनके द्वारा कथित श्रुतज्ञानके अवलबनसे अपने आत्माका निर्णय करना चाहिये यह प्रथम कर्तव्य है । किसी परके अवलबनसे धर्म प्रगटता नही, तो भी जब स्वय अपने पुरुषार्थसे समझता है तब उसमे निमित्तरूपसे सत्देव-गुरु ही होते हैं ।

इसप्रकार पहला ही निर्णय यह आया कि कोई पूर्ण पुरुष सपूर्ण सुखी है और सपूर्ण ज्ञाता है, वही पुरुष पूर्ण सुखका सत्य-मार्ग कह सकता है, स्वय उसे समझकर अपना पूर्ण सुख प्रगट कर सकता है और स्वय वह समझे तभी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र ही निमित्तरूप होते हैं । जिसको स्त्री, पुत्र, पैसा आदिकी अर्थात् ससारके निमित्तोकी ओर तीव्र आसक्ति हो और धर्मके निमित्त देव-गुरु-शास्त्रके प्रति प्रीति न हो उसको श्रुतज्ञानका अवलबन नही प्रगटेगा, और श्रुतज्ञानके अवलबन बिना आत्माका निर्णय नही होगा । अत जो विषयोमे सुख माने या कुदेवादिको माने उसको आत्म-निर्णय होता ही नही ।

यथार्थ धर्म कैसे होता है उसके हेतु जिज्ञासु जीव पूर्ण ज्ञानी भगवान, साधक सत गुरु, और उनके कहे शास्त्रोके अवलबनसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेको उद्यमी होनेके पश्चात्

ज्ञानस्वभावका निर्णय करके अतर्मुख होकर साक्षात् अनुभव करे, यह धर्मकी कला है, धर्मकी कला ही ससार नही समझा। यदि धर्मकी एक कला ही सीख ले तो उसका मोक्ष हुये बिना नही रहेगा–जैसे दोज उगे वह बढकर पूर्णिमा होती ही है।

जिज्ञासु जीव पहले सुदेवादि और कुदेवादिका निर्णय करके कुदेवादिको छोडता है और उसको सत्देव–गुरुकी ऐसी लगन लगती है कि सत्पुरुषोने जो कहा है वही समझनेका लक्ष है, अर्थात् तीव्र अशुभसे तो हट ही गया है। जो सासारिक रुचिसे पीछे नही हटे तो वीतरागी श्रुतके अवलम्बनमे टिक नही सकता।

धर्म कहां है और कैसे होता है?

बहुतसे जिज्ञासुओंको प्रश्न उठता है कि धर्मके हेतु पहले क्या करना चाहिये? उसके उत्तरमे ज्ञानी कहते हैं कि तेरे ज्ञान-स्वभावका निर्णय कर। बाह्यमे कही भी आत्माका धर्म नही। धर्म तो अपना स्वभाव है। धर्म पराधीन नही। किसीके अवलम्बनसे धर्म नही होता, किसीके दिये दिया नही जाता, किन्तु अपनी पहिचानसे ही धर्म होता है। जिसको अपना पूर्णानन्द चाहिये हो उसको पूर्ण आनन्दका स्वरूप क्या है, यह निश्चित करना चाहिये। जो आनन्द मैं चाहता हूँ वह पूर्ण-अबाधित चाहता हूँ, इसलिये जिन आत्माओने वैसी पूर्णानन्द

दशा प्राप्त की है उन्हे ज्ञान भी पूर्ण ही है, इसप्रकार जिनको पूर्णानन्द प्रगटा है वे सर्वज्ञ भगवान हैं, उनका और उन्होने क्या कहा है उसका जिज्ञासुओको निर्णय करना चाहिये। इसीसे कहा है कि प्रथम श्रुतज्ञानके अवलवनसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करना चाहिये, इसमे उपादान-निमित्तकी सधि रहती है। ज्ञानी कौन है, सत् वात कौन कहता है,–यह सव निर्णय करनेके लिये निवृत्ति लेना चाहिये। जीवको स्त्री–कुटुव–लक्ष्मीके प्रेममें और ससारकी रुचिमे कमी नही होगी तो वह सत्समागमके लिये निवृत्ति नही ले सकता। श्रुतका अवलवन लेनेको कहा वही अशुभ भावका त्याग आ गया, और सच्चे निमित्तोकी पहिचान करना भी आ गया।

सुखका उपाय—ज्ञान और सत्समागम

हे जीव! तुझे सुख चाहिये न? जो तू सुख चाहता हो तो तू पहिले सुख कहा है और कैसे प्रगट होता है उसका निर्णय कर, ज्ञान कर। सुख कहाँ है और कैसे प्रगटे उसके ज्ञान विना कष्ट सहन करते हुये सूख जाये तो भी सुख नही मिलेगा, धर्म नही होगा। सर्वज्ञ भगवान कथित श्रुतज्ञानके अवलवनसे यह निर्णय होता है, और ऐसा निर्णय करना ही प्रथम धर्म है। जिसको धर्म करना हो वह धर्मीको जाने और धर्मी क्या कहता है उसका निर्णय करनेके लिये सत्समागम करे। सत्-समागमसे जिसको श्रुतज्ञानका अवलबन हुआ कि अहो! परिपूर्ण

आत्मवस्तु, यही उत्कृष्ट महिमावान है! ऐसे पर मस्वरूपको मैंने अनन्त कालमे भी नही जाना।—ऐसा लगते ही उसको स्वरूपकी रुचि जागेगी और सत्समागमका रग चढ़ेगा अर्थात् उसको कुदेवादि या ससारकी ओरका रग उड जायेगा, रागका रग भी उड जायगा और ज्ञानस्वभावकी ओर वृत्ति हो जायगी।

यदि ज्ञानस्वभावी वस्तुकी महिमा जाने तो प्रेम जागृत होगा और उस ओर पुरुषार्थ लगेगा। अनादिसे स्वभावको भूलकर परभावरूपी परदेशमे भटकता है, स्वरूपसे बाहर ससारमें भटकते हुए जीवको महाभाग्यसे परम पिता सर्वज्ञ परमात्मा और परम हितकारी गुरु मिले। वे पूर्ण हित कैसे होता हे यह समझाते हैं और आत्माके स्वरूपकी पहिचान कराते हैं। अहो, अपने स्वरूपको जानकर क्या जिज्ञासुको उल्लास नही आयेगा? आत्मस्वभावकी बात जानकर जिज्ञासु जीवोको उल्लास आता ही है . अहो! अनन्तकालसे यह अपूर्व ज्ञान नही हुआ, स्वरूपसे बाहर परभावमें भ्रमते हुये अनन्तकाल दु खी होता रहा। यह अपूर्व ज्ञान पहले जो कही होता तो यह दु ख नही होता। इसप्रकार स्वरूपकी लगन लगती है, रस आता है और महिमा जागती है और उस महिमाका यथार्थरूपमे अभ्यास करते हुये स्वरूपका निर्णय करके स्वसन्मुख होता ह।

इसप्रकार जिसको धर्म करके सुखी होना हो उसको प्रथम श्रुतज्ञानका अवलबन लेकर आत्माका निर्णय करना चाहिये। भगवान कथित श्रुतज्ञानरूपी डोरको दृढतासे पकडकर उसके

अवलबनसे स्वरूपमे पहुँच जाना है। श्रुतज्ञानके अवलबनका अर्थ क्या ? जिसको सच्चे श्रुतज्ञानका ही रस है, अन्य कुश्रुतका रस नही, संसारकी बातोका रस छूट गया है, और श्रुतज्ञानका तीव्र रस लगा है, इसप्रकार श्रुतज्ञानके अवलबनसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेको जो तैयार हुआ है, उसका अल्पकालमें आत्मभान होगा। ससारका तीव्र राग जिसके हृदयमे घुसता हो उसको इस परम शात स्वभावकी बात समझनेकी पात्रता जागृत नही होती। यहाँ जो 'श्रुतका अवलबन' कहा है वह अवलबन तो स्वभावके लक्षसे है, पीछे न फिरनेके लक्षसे है। श्री समयसार-मे अप्रतिहत शैलीसे ही कथन है। ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेके लिये जिसने श्रुतके अवलबनका यत्न किया वह आत्मस्वभावका निर्णय और अनुभव करता ही है, पीछे नही फिरता, ऐसी बात ही समयसारमें कही गई है।

ससारकी रुचि घटाकर आत्माका निर्णय करनेके लक्षसे जो यहा तक आ गया उसको श्रुतज्ञानके अवलबनसे निर्णय होना ही है, निर्णय न हो ऐसा नही होगा। यहा दीर्घ ससारीकी बात नही...यहाँ तो अल्पकालमे मोक्ष जानेवाले जीवोकी बात है, सभी बातोमे हां जी हा करे और एक भी बातका अपने ज्ञानमे निर्णय करे नही ऐसे 'ध्वजाकी पूछ जैसे' जीवोकी बात यहाँ नही है, जो अनंतकालके ससारका अत लानेके लिये पूर्ण स्वभावके लक्षसे प्रारभ करने निकला है ऐसा जीव प्रारभ करनेके पश्चात् पीछे नही फिरता। ऐसी ही यहा

बात है। यह तो अप्रतिहत मार्ग है। पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भ ही वास्तविक प्रारम्भ है, पूर्णताके लक्षसे किया गया प्रारम्भ पीछे नही फिरता. पूर्णताके लक्षसे पूर्णता होती है।

जिस ओरकी रुचि उसी ओरकी लगन

इसमे एक न एक बात घुमा-फिराकर बारबार कही जाती है, जिससे रुचिवान जीवको ऊब न आवे। जिसप्रकार नाटककी रुचिवाला नाटकमे 'वन्स मोर' कहकर अपनी रुचि-वाली वस्तुको बार-बार देखता है, उसीप्रकार जिन भव्य जीवोको आत्माकी रुचि हुई और आत्माका हित करने हेतु निकले वे बारम्बार रुचिपूर्वक प्रत्येक समय—खाते, पीते, चलते, सोते, बैठते, विचारते निरन्तर श्रुतका ही अवलबन स्वभावके लक्षसे करते हैं, उसमे किसी काल किसी क्षेत्रकी मर्यादा नही करते। उनकी श्रुतज्ञानकी रुचि और जिज्ञासा ऐसी जमी है कि कहीं से भी फिसलती नही। अमुक समय अवलबन करना और उसके पश्चात छोड देना ऐसा नही कहा, परन्तु श्रुतज्ञानके अवलबनसे आत्माका निर्णय करनेको कहा है। जिसको सच्चे तत्त्वकी रुचि हुई है वह अन्य सब कार्योकी प्रीतिको गौण ही करता है, और उसकी परिणति आत्माकी ओर लग जाती है।

प्रश्नः—तब क्या सत्की प्रीति होनेपर खाना-पीना और धधा-व्यापार सभी छोड देना चाहिये? श्रुतज्ञान ही समझते रहना चाहिये, परन्तु समझकर करना क्या?

उत्तरः—सत्की प्रीति होनेपर तुरंत ही खाने-पीनेका सब राग छूट जाय ऐसा नियम नही, परन्तु उस ओरकी रुचि तो अवश्य घटेगी। परमेसे सुखबुद्धि उड जाती है और सर्वत्र एक आत्मा ही आगे रहता है, अत निरतर आत्माकी ही लालसा रहती है। मात्र 'श्रुतज्ञान ही समझते रहना' ऐसा नही कहा है, परन्तु श्रुतज्ञान द्वारा आत्माका निर्णय करना है; श्रुतज्ञानके अवलवनकी धुन आते ही देव, गुरु, शास्त्र, धर्म, निश्चय, व्यवहार, द्रव्य, पर्याय आदि सभी आश्रय जानकर एक ज्ञानस्वभावी आत्माका निश्चय करना चाहिये, इसमें भगवान कैसे, उनके शास्त्र कैसे, और वे क्या कहते हैं, इन सबका अवलवन ऐसा निर्णय कराता है कि तू ज्ञान है, आत्मा ज्ञानस्वरूपी ही है, ज्ञानके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी तू कर नहीं सकता।

देव-गुरु-शास्त्र कैसे हैं और उन देव-गुरु-शास्त्रको जानकर उनका अवलवन लेनेवाले स्वय क्या समझते हैं वह इसमे वताया है। हे जीव! तू ज्ञानस्वभावी आत्मा है, तेरा स्वभाव जानना ही है, कुछ परका करना या पुण्य-पापका भाव करना यह तेरा स्वरूप नही,—ऐसा जो वताते हो वे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हैं, और उसी प्रकारसे जो समझे वही देव-गुरु-शास्त्र कथित श्रुतज्ञानको समझता है। परन्तु जो रागसे धर्म मानते हो, शरीरकी क्रिया आत्मा करे ऐसा मानते हो, जड कर्म आत्माको दुःख देता है ऐसा कहते हो, वे देव-गुरु-शास्त्र सच्चे नही, क्योंकि वे सच्चे वस्तुस्वरूपके जानकार नही, परन्तु सत्यसे विपरीत स्वरूप बताते हैं।

❀ श्रुतज्ञानके अवलंबनका फल—आत्मअनुभव ❀

'मैं आत्मा तो ज्ञायक हूं' पुण्य-पापकी वृत्तियां मेरी ज्ञेय है, वे मेरे ज्ञानसे भिन्न हैं,—ऐसे विचार द्वारा जिज्ञासु जीव पहले यथार्थ निर्णय करता है, अभी ज्ञानस्वभावका अनुभव नही हुआ उसके पहलेकी यह बात है। जिसने स्वभावके लक्षसे श्रुतका अवलम्बन लिया है वह अल्पकालमे आत्मअनुभव करेगा ही। प्रथम विचारमे ऐसा निश्चय किया कि परसे तो मैं भिन्न हूं, पुण्य-पाप भी मेरा स्वरूप नही, मेरे शुद्धस्वभावके अतिरिक्त देव-गुरु-शास्त्रका भी अवलम्बन परमार्थसे नही, मैं तो स्वाधीन ज्ञानस्वभावी हूं,—ऐसा जिसने निर्णय किया उसको ज्ञानस्वभावी आत्माका अनुभव हुये बिना रहेगा ही नही। यहा आरम्भ ही इतना जोरदार हुआ है कि पीछे फिरनेकी बात ही नही।

'पुण्य-पाप मेरा स्वरूप नही, मैं ज्ञायक हूं' जिसने निर्णयके द्वारा यह स्वीकार किया उसका परिणमन पुण्य-पापकी ओरसे हटकर ज्ञायक स्वभावकी ओर लगेगा। 'मैं ज्ञानस्वभाव हू' ऐसा जिसने आत्माका निर्णय किया उसको पुण्य-पापका आदर नही रहा, इससे वह अल्पकालमें पुण्य-पाप रहित ज्ञानस्वभावका अनुभव करके उसमे स्थिरता कर वीतराग होकर पूर्ण परमात्मा हो जायगा। पूर्णकी ही बात है; आरंभ हुई है वह पूर्णताको लक्षमे लेकर ही हुई है, समझानेवाले और समझनेवाले दोनोका पूर्णताका ही ध्येय है। जो पूर्ण स्वभाव बताते हैं ऐसे देव-

गुरु-शास्त्र तो पवित्र हैं ही और उस स्वभावको जिसने स्वीकार किया उसका भी परिणमन पवित्रताकी ओर गया। पूर्णको स्वीकार किया वह पूर्ण होगा ही। इसप्रकार उपादान-निमित्तकी संधि है।

सम्यग्दर्शन होनेके पूर्व ..

आत्माका आनंद प्रगट करने हेतु पात्रताका स्वरूप कहते हैं। हे भाई ! तुझे धर्म करना है न ! तो तू अपनेको पहिचान। पहले सच्चा निर्णय करनेकी बात है। अरे तू है कौन ? क्या क्षणिक पुण्य-पापका करनेवाला ही तू है ? नही, नही, तू तो ज्ञान करनेवाला ज्ञानस्वभावी है। परको ग्रहण करनेवाला या छोडनेवाला तू नही है, जाननेवाला ही तू है। ऐसा निर्णय ही धर्मके प्रथम प्रारंभका (सम्यग्दर्शनका) उपाय है। प्रारंभमें अर्थात् सम्यग्दर्शनके पहले ऐसा निर्णय न करे तो वह पात्रतामें भी नही। मेरा सहज स्वभाव जाननेका है—ऐसा श्रुतके अवलम्बनसे जो निर्णय करता है वह पात्र जीव है। जिसको पात्रता हुई वह आगे बढकर अनुभव करेगा ही। सम्यग्दर्शन करनेके लिये पहले जिज्ञासु जीव—धर्मके सन्मुख हुआ जीव—सत्समागममें आया जीव श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करता है।

मैं ज्ञानस्वभावी जाननेवाला हू, ज्ञेयमें कही राग-द्वेष करके अटके वह मेरा ज्ञानस्वभाव नही। पर चाहे जो हो, मैं तो

उसका केवल जाननेवाला मात्र हू, मेरा जाननेवाला स्वभाव परका कुछ करनेवाला नहीं। मैं जिसप्रकार ज्ञानस्वभावी हू उसीप्रकार जगतके बहुत आत्मा ज्ञानस्वभावी हैं, जिन्होने स्वयं अपने ज्ञानस्वभावके निर्णयमे भूल की है वे दु खी हैं; वे जब अपने ज्ञानस्वभावका निर्णय करेंगे तब उनका दु ख टलेगा। मै किसीको बदलनेमें समर्थ नही। पर जीवोके दुःख मैं टाल नही सकता क्योकि दु'ख उन्होने अपनी भूलसे किये है, वे अपनी भूल टाले तो उनका दु ख टलेगा। किसी परके लक्षसे अटक जानेका ज्ञानका स्वभाव नहीं—ऐसे ज्ञानस्वभावका निर्णय करना सम्यक्त्वकी पात्रता है।
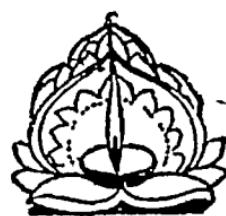
सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी रीति

[दूसरा भाग]

(समयसार गा. १४४का प्रवचन)

सम्यग्दर्शनकी जिसको जिज्ञासा है ऐसा पात्र जीव प्रथम तो श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे आत्माके ज्ञान-स्वभावको अव्यक्तरूपसे लक्षमे लेता है, और उसके पश्चात् प्रगट लक्षमें लेकर साक्षात अनुभव करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।— किस भाति? वह यहा बताया है।

" . पश्चात् आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके हेतु, परपदार्थकी प्रसिद्धिके कारण जो इन्द्रिय और मन द्वारा प्रवर्तती बुद्धिया हैं उनको मर्यादामें लाकर जिसने मतिज्ञान तत्वको आत्मसन्मुख किया है... ." जैसा निर्णय किया था वैसा अब प्रगट अनुभव करता है, जो निर्णय किया था उसका फल प्रगट होता है।

इस ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय जगतके बहुत आत्मा कर सकते हैं। बहुत आत्मा परिपूर्ण भगवान ही हैं, इससे सभी अपने ज्ञानस्वभावका निर्णय कर सकनेमें समर्थ हैं। जो अपने आत्माका हित करना चाहे उसको हो सकता है। परन्तु जीवने अनादिसे अपनी परवाह नही की। रे भाई! तू क्या वस्तु है, यह जाने बिना तू करेगा क्या? पहले इस ज्ञानस्वभावी

आत्माका निर्णय करना चाहिये। यह निर्णय होते ही अव्यक्त-रूपसे आत्माका लक्ष आया, उसके पश्चात् पर लक्ष और विकल्प छोड़कर स्वलक्षसे प्रगट अनुभव कैसे करना चाहिये वह बताते है।

इन्द्रिय और मनसे जो पर लक्ष होता है उसको बदलकर मतिज्ञानको स्वमें एकाग्र करनेसे आत्मा प्रगट प्रसिद्ध होता है अर्थात् अनुभव होता है, आत्माका प्रगटरूप अनुभव होना ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

धर्मके अर्थ पहले क्या करना चाहिये ?

यह कर्ताकर्म-अधिकारकी अन्तिम गाथा है, इस गाथामे जिज्ञासुको मार्ग बताया है। लोग कहते हैं कि आत्माको न समझ सके तो पुण्यका शुभभाव तो करना चहिये या नही ? उसका उत्तर कहते है कि—प्रथम स्वभाव समझना ही धर्म है। धर्मसे ससारका अन्त आता है; शुभभावसे धर्म होता नही और धर्म बिना ससारका अन्त आता नही। धर्म तो अपना स्वभाव है, इसलिये पहले स्वभाव समझना चाहिये। शुभभाव होता है अवश्य, पर वह कर्तव्य नही। शुभ-अशुभ भाव तो अनादिकालसे करता आया है, वह कोई धर्मका उपाय नही, किन्तु उस शुभ-अशुभ भावसे रहित ज्ञानस्वभावी आत्माकी पहिचान करना ही धर्म है।

प्रश्नः—स्वभाव समझमें न आये तो क्या करना चाहिये ? समझनेमें देर लगे तो क्या करना चाहिये ?

उत्तरः—रुचिपूर्वक प्रयत्न करे उसको यह बात समझमे नही आये ऐसा होता नही। समझनेमे देरी लगे वहा समझनेके लक्षसे अशुभभाव टलकर शुभभाव तो सहज ही होते हैं, परन्तु शुभभावसे धर्म नही होता ऐसा जानना चाहिये। जबतक कोई भी जड वस्तुकी क्रिया और रागकी क्रिया जीव अपनी माने तबतक वह सत्य समझनेके मार्ग पर नही है।

*** सुखका मार्ग, सत्यको समझना;**
विकारका फल जड़का संयोग *

जीवको यदि आत्माको सच्ची रुचि हो तो वह समझनेका मार्ग लिये बिना रहेगा नही, सत्य समझना हो, सुख चाहिये हो तो यही मार्ग है। चारित्र दशामे भले ही विलम्ब हो परन्तु मार्ग तो सत्य समझनेका ही लेना चाहिये न! सत्य समझनेका मार्ग ले तो सत्य समझे बिना रहेगा ही नही। यदि ऐसे मनुष्य भवमे और सतसमागमके योगसे भी सत्य न समझे तो फिर सत्यका ऐसा अवसर मिलना दुर्लभ है। मैं कौन हू इसकी जिसको खबर नही और यहा ही स्वरूपको भूल जाता है तो परभवमे जहाँ जायेगा वहा क्या करेगा? स्वरूपके भान बिना शाति कहासे लायेगा? आत्माके भान बिना कदाचित् शुभभाव किया हो तो उस शुभके फलमे आत्मा नही मिलेगा। आत्माकी शाति तो आत्मामे है, परन्तु उसकी तो परवाह भी नहीं।

असाध्य कौन और शुद्धात्मा कौन ?

जो जीव यहां ही जडके साथ एकत्वबुद्धि करके जडकी भांति होगया है, अपनेको भूलकर सयोगदृष्टिसे मरता है, असाध्यरूपसे वर्तता है अर्थात् चैतन्य स्वरूपका भान नही, वह जीवित ही असाध्य है। भले शरीर हिले-चले-बोले परन्तु यह तो जडकी क्रिया है, उसका स्वामी हुआ, परन्तु अन्तरमे साध्य जो ज्ञानस्वरूप है उसकी जिसको खबर नही वह 'असाध्य' है। वस्तुका स्वभाव यथार्थरूपमें सम्यग्दर्शन सहित ज्ञानसे न समझे तो जीवको स्वरूपका किंचित् लाभ नही। सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा स्वरूपकी पहिचान और अनुभव किया उसको ही 'शुद्धआत्मा' ऐसा नाम मिलता है, वही समयसार है और वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है, "मैं शुद्ध हूँ" ऐसा विकल्प छूटकर एक मात्र आत्म-अनुभव हो तब ही सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान होता है। सम्यक्दर्शन और सम्यकज्ञान आत्मासे पृथक् नही वह शुद्धआत्मारूप ही है।

सत्य जो चाहता हो ऐसे जिज्ञासु-समझदार जीवको कोई असत्य कहे तो वह असत्यकी स्वीकृति नही देगा-वह असत्को स्वीकार न करेगा। रागसे स्वभावका अनुभव होगा ऐसी बात उसको जमेगी नही। जो सत्स्वभाव चाहता हो वह स्वभावसे विरुद्ध भावकी स्वीकृति नही देता, उसे अपना नही मानता। वस्तुका स्वरूप शुद्ध है उसका उचित निर्णय किया और रागसे

भिन्न होकर ज्ञान स्वसन्मुख होते ही जो अभेद शुद्ध अनुभव हुआ वही समयसार है और वही धर्म है। ऐसा धर्म किस भाति हो, धर्म करनेके हेतु पहले क्या करना ? इस सम्बन्धमे यह कथन चलता है।

❀ धर्मकी रुचिवाला जीव कैसा होता है ? ❀

धर्मके लिये पहले श्रुतज्ञानका अवलम्बन लेकर श्रवण-मननसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निश्चय करना चाहिये कि मैं एक ज्ञानस्वभावी हू, मेरे ज्ञानस्वभावमें ज्ञानके अतिरिक्त कोई करने-धरनेका स्वभाव नही। इस प्रकार सत्के समझनेमें जो समय जाता है वह अनन्त कालसे नही किया ऐसा अपूर्व अभ्यास है। जीवको सत्की ओरकी रुचि होनेसे वैराग्य जागृत होता है और समस्त ससारकी ओरकी रुचि हट जाती है। चौरासीके अवतारका दु ख मनमें आने लगता है कि 'अरे'! यह दुःख क्या ? यह दु ख कब तक ? स्वरूपका भान नही और क्षण क्षण पराश्रयभावमे प्रसन्न होना—यह कोई मनुष्य जीवन है ? तिर्यंच आदिके दु खकी तो वात ही क्या, किन्तु इस मनुष्य पर्यायमे भी ऐसा जीवन ? और मरण समय स्वरूप-के भान विना असाध्य होकर मरना ?' नही, अब इससे छूटने-का उपाय करूँ और शीघ्र इस दु खसे आत्माको मुक्त करूँ। —इस प्रकार ससारका दु ख होते हुये भी स्वरूप समझनेकी रुचि होती है। स्वभाव समझनेके लिये जो उद्यम होता है वह भी ज्ञानकी क्रिया है, सत्का मार्ग है।

जिज्ञासुओको प्रथम ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करना चाहिये मैं एक जाननेवाला हूँ, मेरा स्वरूप ज्ञान है, वह जाननेवाला है, पुण्य–पाप कोई मेरे ज्ञानका स्वरूप नही पुण्य–पापके भाव या स्वर्ग–नर्क आदि कोई गति मेरा स्वभाव नही, —इस प्रकार श्रुतज्ञान द्वारा आत्माका निर्णय करना ही धर्मका प्रथम उपाय है। श्रुतके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभावका जो निर्णय किया उसका फल, उस निर्णयके अनुसार अनुभव करना ही है। आत्माका निर्णय 'कारण' और आत्माका अनुभव 'कार्य'—इस प्रकार यहा लिया गया है, अतएव जो निर्णय करता है उसको अनुभव होता ही है ऐसी बात की है। कारणके सेवन-अनुसार कार्य प्रगट होता ही है।

❀ अन्तर्-अनुभवका उपाय अर्थात् ज्ञानकी क्रिया ❀

आत्माका निर्णय करनेके पश्चात् उसका प्रगट अनुभव किस प्रकार करना वह बताते हैं। निर्णयके अनुसार ज्ञानका आचरण अनुभव है। प्रगट अनुभवमें शातिका वेदन लानेके लिये अर्थात् आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये, परपदार्थकी प्रसिद्धिके कारणको छोड देना अर्थात् इन्द्रिय और मनका अवलम्बन छोडकर ज्ञानको स्वकी ओर मोड़ना। देव–गुरु–शास्त्र आदि पर पदार्थोंकी ओरका लक्ष तथा मनके अवलम्बनके कारण प्रवर्तती बुद्धिको सकोचकर–मर्यादामे लाकर ज्ञानको अपनी ओर मोडना, यह अन्तर्-अनुभवका पथ है, और यही सहज शीतलस्वरूप अनाकुल स्वभावमें प्रवेशका द्वार है।

प्रथम मैं आत्मा ज्ञानस्वभावी हू—ऐसा यथार्थ निश्चय करके, पश्चात् उसका अनुभव करनेके लिये, परकी ओर लगे मति और श्रुतज्ञानको स्वकी ओर एकाग्र करना। यथार्थमें तो जहा ज्ञानस्वभावको लक्षगत किया जाय वहा मति-श्रुतका उपयोग अन्तरमें जागृत हो ही जाता है, इसलिये जो ज्ञान विकल्पमें अटका है वह ज्ञान वहांसे छूटकर स्वभावमे आता है। ज्ञान आत्मसन्मुख होते ही स्वभावका निर्विकल्प अनुभव होता है।

ज्ञानमें भव नहीं

जिसमे मनके अवलम्बनसे प्रवर्तते ज्ञानको मनसे छुडाकर स्वकी ओर मोडा है अर्थात् परकी ओर लगे हुये मतिज्ञानको मर्यादामे लेकर आत्मसन्मुख किया है उसके ज्ञानमें अनन्त ससारका नास्तिभाव और ज्ञानस्वभावका अस्तिभाव है। ऐसी समझ और ऐसा ज्ञान करना उसमे अनन्त पुरुषार्थ है। स्वभावमे भव नहीं, इससे जिसको स्वभावकी ओरका पुरुषार्थ उदय हुआ उसको भवकी शका रहती नही। जहां भवकी शंका है वहां सच्चा ज्ञान नही, और जहा सच्चा ज्ञान है वहां भवकी शका नही—इसप्रकार 'ज्ञान' और 'भव' की एक-दूसरेमें नास्ति है।

पुरुषार्थ द्वारा सत्समागमसे अकेले ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेके पश्चात् 'मैं अबध हूं या बधवाला हू, शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूं, त्रिकाली हूं या क्षणिक हू' ऐसी जो वृत्तिया उठें

उनमें भी आत्मशांति नही, वे वृत्तियाँ आकुलतामय है, आत्म-शांतिकी विरोधिनी हैं। नय-पक्षोके अवलम्बनसे हुए मन संबधी अनेक प्रकारके विकल्पोको भी मर्यादामे लाकर अर्थात् उन विकल्पोसे भी ज्ञानको पृथक् करके श्रुतज्ञानको भी आत्मसन्मुख करते हुये शुद्धात्माका अनुभव होता है। इस भांति मति और श्रुतज्ञानको आत्म-सन्मुख करना ही सम्यग्दर्शनकी रीति है। इन्द्रिय और मनके अवलम्बनसे मतिज्ञान पर लक्षसे प्रवर्तता है उसको, और मनके अवलम्बनसे श्रुतज्ञान अनेक प्रकारके नय-पक्षोके विकल्पोमें अटकता है उसको,—अर्थात् बाह्यमे भ्रमते मतिज्ञान और श्रुतज्ञानको मर्यादामें लाकर, अन्तर्स्वभाव-सन्मुख करके, एक ज्ञानस्वभावको पकड़कर (उपयोगमें लेकर) निर्विकल्प होकर तत्काल निजरससे ही प्रगट होनेवाले शुद्धात्माका अनुभव करना, यह अनुभव ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

अनुभवमें आनेवाला शुद्धात्मा कैसा है?

शुद्धस्वभाव आदि-मध्य-अन्त रहित त्रिकाल एकरूप है, उसमे बन्ध-मोक्ष नही, वह अनाकुल स्वरूप है, 'मैं शुद्ध हूँ कि अशुद्ध हूँ'—ऐसे विकल्पसे होनेवाली जो आकुलता उससे रहित है। लक्ष्यमेंसे पुण्य-पापका आश्रय छूटनेसे एकमात्र आत्मा ही अनुभवमें आता है, केवल एक आत्मामे पुण्य-पापका कोई भाव नही। मानो समस्त विश्वके उपर तैरता हो, अर्थात् समस्त विभावोंसे भिन्न हो गया हो,—ऐसा चैतन्यस्वभाव स्वतंत्र

अखण्ड प्रतिभासमय अनुभवमें आता है। आत्माका स्वभाव पुण्य-पापके ऊपर तैरता है, अर्थात् उसमे मिल जाता नही, उसरूप होता नही, परन्तु उससे पृथक्-स्वतत्र रहता है। इसके अतिरिक्त वह अनन्त है, इसलिये उसके स्वभावका कोई अंत नही, पुण्य-पाप तो अन्तवाले हैं, ज्ञानस्वरूप अनन्त है, और विज्ञानघन है, एकमात्र ज्ञानका ही पिण्ड है। अकेले ज्ञान-पिण्डमे राग-द्वेष किंचित् भी नही। रागका अज्ञानभावसे कर्ता था, परन्तु स्वभावभावसे रागका कर्त्ता नही। अखण्ड आत्म-स्वभावका निर्णय करके पश्चात समस्त विभावभावोंका लक्ष छोडकर ज्यो ही आत्मा, विज्ञानघन (अर्थात् जिसमें कोई विकल्प प्रवेश नही कर सके ऐसे ज्ञानके अन्तिम पिण्डरूप) परमात्मस्वरूप समयसारका अनुभव करता है त्यो ही वह स्वय सम्यक्दर्शन और सम्यकज्ञानरूप है।

* निश्चय और व्यवहार *

इसमें निश्चय-व्यवहार दोनों आ जाते हैं। अखण्ड विज्ञानघन स्वरूप ज्ञानस्वभावी आत्मा निश्चय है और परिणतिको स्वभाव-सन्मुख करना वह शुद्ध व्यवहार है। मति-श्रुतज्ञानको स्वकी ओर झुकानेके पुरुषार्थरूपी जो पर्याय है वह व्यवहार है, अखण्ड आत्मस्वभाव निश्चय है। ज्यो ही मति-श्रुत ज्ञानको अपनी ओर मोडा और आत्माका अनुभव किया उसी समय आत्मा सम्यक्रूपसे दिखता है—श्रद्धामे आता हैं। यह सम्यक्दर्शन प्रगट होते समयकी वात है।

सम्यक्दर्शन होनेपर क्या होता है?

सम्यक्दर्शन होनेपर स्वरसका अपूर्व आनन्द अनुभवमे आता है, आत्माका सहज आनन्द प्रगट होता है, आत्मिक आनन्दका उफान आता है, अन्तरमे आत्मशातिका वेदन होता है, आत्माका सुख अतरमें है वह प्रगट अनुभवमें आता है, यह अपूर्व सुखका मार्ग सम्यग्दर्शन ही है। 'मैं भगवान आत्मा समयसार हूं'—ऐसा जो निर्विकल्प शातरस अनुभवमे आता है वही समयसार है और वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है। यहा तो सम्यग्दर्शन और आत्मा दोनो अभेद लिए हैं। आत्मा स्वय सम्यग्दर्शनस्वरूप है।

* बारंबार ज्ञानमें एकाग्रताका अभ्यास करना *

सत्श्रुतके परिचयसे ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय करनेके पश्चात् मति-श्रुतज्ञानको उस स्वभावकी ओर झुकानेका प्रयत्न करना, निर्विकल्प होनेका पुरुषार्थ करना यही सम्यक्त्वका मार्ग है। इसमे तो बारम्बार ज्ञानमे एकाग्रताका अभ्यास करना है बाह्यमे कुछ करनेका नही। ज्ञानमे स्वभावका अभ्यास करते करते ज्यो ही एकाग्र हुआ, त्यो ही उसी समय सम्यग्ज्ञानरूपसे यह आत्मा प्रगट होता है। यह ही जन्म-मरण टालनेका उपाय है। एकमात्र जाननेका स्वभाव है उसमें अन्य कुछ करनेका स्वभाव नही। निर्विकल्प अनुभवके लिए ऐसा निश्चय करना

चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरा माने उसको तो व्यवहारसे भी आत्माका निश्चय नही। वाह्यसे दूसरे लाख उपायोसे भी ज्ञान नही होता, किन्तु ज्ञानस्वभावकी पकडसे ही ज्ञान होता है, सवमेसे एक ज्ञानस्वभावी आत्माको लेकर, पश्चात् उसका लक्ष करके प्रगट अनुभव करनेके लिए, मति-श्रुतज्ञानकी वाहर झुकती पर्यायोको स्वसन्मुख करनेसे तत्काल निर्विकल्प निज स्वभाव-रसके आनन्दका अनुभव होता है। अन्तरमें दृष्टि करके परमात्म-स्वरूपका दर्शन जिस समय करता है उसी समय आत्मा स्वय सम्यग्दर्शनरूप प्रगट होता है, एकबार जिसको आत्माकी ऐसी प्रतीति हो गयी है उसको फिर विकल्प आये तो भी जो आत्म-दर्शन हो गया है उसका तो भान है, अर्थात् आत्मानुभवके पश्चात् विकल्प उठे उससे सम्यग्दर्शन चला नही जाता सम्यक्-दर्शन कोई वेष नही, किन्तु जिसे स्वानुभवरूप परिणमन हुआ वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

सम्यग्दर्शनसे ज्ञानस्वभावी आत्माका अनुभव करनेके पश्चात् भी शुभाशुभ भाव आते अवश्य हैं परन्तु आत्महित तो ज्ञान-स्वभावका अनुभव करनेसे ही होता है। जैसे-जैसे ज्ञानस्वभावमें एकाग्रता वढती जाती है वैसे वैसे शुभाशुभ भाव भी हटते जाते हैं। बाहरके लक्षसे जो वेदन होता है वह बहुत दु खरूप है, अन्तरमे शातरसकी मूर्ति आत्मा है उसके लक्षसे जो वेदन होता है वही सुख है। सम्यग्दर्शन आत्माका गुण है, गुण गुणीसे भिन्न नही होता। एक अखण्ड प्रतिभासमय आत्माका अनुभव ही सम्यग्दर्शन है, और वह आत्मा ही है।

भव्यको सीख

हे भव्य ! आत्मकल्याणके लिए तू यह उपाय कर। अन्य सभी उपाय छोडकर यही करना है। हितका साधन बाहर लेशमात्र नही। मोक्षार्थीको सत्‌समागमसे ज्ञानस्वरूप आत्माका निश्चय करना चाहिए। पहले अन्तरसे सत्‌का स्वीकार किए बिना सत्स्वरूपका ज्ञान होता नही और सत्स्वरूपके ज्ञान बिना भवबन्धनकी बेडी टूटती नही। भवबन्धनके अन्त बिना जीवन किस कामका ? भवके अन्तकी श्रद्धा बिना कदाचित् पुण्य करे तो उसका फलमें राजपद या देवपद मिलेगा, परन्तु उसमे आत्माका क्या ? आत्माके भान बिना तो यह पुण्य और यह देवपद सब धूल समान हैं, उनमे आत्माकी शान्तिका अश भी नही। इसलिए पहले श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभावका दृढ़ निश्चय करनेसे भवकी शका नही रहती, और जितनी ज्ञानकी दृढता होती है उतनी शान्ति बढती जाती है।

भाई, प्रभु ! तू कसा है, तेरी प्रभुताकी महिमा कैसी है यह तूने जाना नही। तेरी प्रभुताके भान बिना तू बाहरमें इसके-उसके गीत गाया करे तो उसमें कही तुझे तेरी प्रभुताका लाभ नही। तूने परके गीत गाये पर अपने गीत गाये नहीं, अर्थात् अपने स्वभावकी महत्ता जमी नही तो तुझे क्या लाभ ? भगवानकी मूर्तिके सामने कहे कि 'हे नाथ, हे भगवान ! आप अनन्त ज्ञानके धनी हो !' तो सामनेसे भी ऐसी प्रतिध्वनि आती है कि 'हे नाथ,

हे भगवान ! आप अनन्त ज्ञानके धनी हो ' अर्थात् जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही तेरा स्वरूप है, उसको तू पहचान, तो तुझे तेरी प्रभुताका लाभ मिलेगा ।

शुद्धात्मस्वरूपका वेदन कहो, ज्ञान कहो, चारित्र कहो, अनुभव कहो या साक्षात्कार कहो–जो कहो वह एक आत्मा ही है । ज्यादा क्या कहे ? जो कुछ है वह यही एक आत्मा है, उसे ही भिन्न भिन्न नामसे कहा जाता है । केवली पद, सिद्ध पद या साध्यपद, ये सभी एक आत्मामे ही समाते हैं । ऐसे आत्म-स्वरूपकी अनुभूति ही सम्यग्दर्शन है ।

सम्यक्त्वके लिए सरस आनन्दकी बात

श्री समयसारकी १४४ वी गाथा अर्थात् सम्यग्-दर्शनका मत्र मुमुक्षुको अत्यन्त प्रिय यह गाथा आत्माका अनुभव करनेकी रीति वताती है उसके प्रवचन आपने पढे । अब यहां उसका सार प्रश्नोत्तर रूपमें दिया है । बार वार उसके भावोका गम्भीर मनन मुमुक्षु जीवको चैतन्य-गुफामे ले जायगा ।

सम्यग्दर्शनका प्रयत्न समझाते हैं और
शुद्धके विकल्पसे आगे ले जाते हैं

प्रश्नः—सम्यग्दर्शन करनेके लिए मुमुक्षुको पहले क्या करना चाहिए ?

उत्तरः—मैं ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसा निश्चय करना।

❖ वह निर्णय किसके अवलम्बनसे होता है?

श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे वह निर्णय होता है।

❖ वह निर्णय करनेवालेका जोर कहा है?

वह निर्णय करनेवाला यद्यपि अभी सविकल्प दशामे है, किन्तु उसका विकल्पके ऊपर जोर नही, ज्ञानस्वभावकी ओर ही जोर है।

❖ आत्माकी प्रगट प्रसिद्धि कब होती है?

आत्माके निश्चयके बलसे निर्विकल्प होकर साक्षात् अनुभव करे तब।

❖ ऐसे अनुभवके हेतु मतिज्ञानने क्या किया?

वह परसे विमुख होकर आत्मसन्मुख हुआ।

❖ श्रुतज्ञानने क्या किया?

पहले जो नयपक्षके विकल्पोकी आकुलता था उससे पृथक् होकर वह श्रुतज्ञान भी आत्मसन्मुख हुआ, ऐसा करनेसे निर्विकल्प अनुभूति हुई, परम आनन्दसहित सम्यग्दर्शन हुआ, भगवान आत्मा प्रसिद्ध हुआ, उसको धर्म हुआ और वह मोक्षके मार्ग पर चला।

❖ आत्मा कैसा है?

आत्मा ज्ञानस्वभाव ही है, 'ज्ञानस्वभाव' में रागादि नही आते, ज्ञानस्वभावमें इन्द्रिय या मनका अवलम्बन नही आता,

अर्थात् जहाँ 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' ऐसा आत्माका निर्णय किया वहाँ श्रुतका झुकाव इन्द्रियो और मनसे तथा रागसे हटकर ज्ञानस्वभावकी ओर हुआ। इसप्रकार ज्ञानस्वभावकी ओर झुकनेसे जो प्रत्यक्ष साक्षात् निर्विकल्प अनुभव हुआ वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है, वही भगवान आत्माकी प्रसिद्धि है। यह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आत्माकी पर्याय है, वह आत्मासे भिन्न नही।

ज्ञानस्वभावके निर्णय द्वारा अनुभव होता है?

हाँ, ज्ञानस्वभावका सच्चा निर्णय जीवने कभी किया नही। 'ज्ञानके बलसे' सच्चा निर्णय करे तो अनुभव हुये बिना नही रहेगा। जिसके फलमे अनुभव न हो वह निर्णय सच्चा नही। विकल्पके समय मुमुक्षुका बल उस विकल्पकी ओर नही किन्तु 'मैं ज्ञानस्वभाव हूँ' ऐसा निर्णय करनेकी ओर बल है। और ऐसे ज्ञानकी ओरके बलसे आगे बढकर ज्ञानको अन्तरमें सजोकर अनुभव करनेसे विकल्प छूट जाता है, ज्ञानका ज्ञानरूपसे परिणमन होता है। उसको आनन्द कहो, उसको सम्यग्दर्शन कहो, उसको मोक्षमार्ग कहो, उसको समयका सार कहो सब उसमे समाता है।

आत्माका रस कैसा है?

आत्माका रस केवल विज्ञानरूप है; धर्मी जीव विज्ञान-रसका ही रसिक है, रागका रस आत्माका रस नही, जिसको रागका रस होता है उसको आत्माके विज्ञान-रसका स्वाद

अनुभवमे नही आता । रागसे भिन्न ऐसे वीतराग-विज्ञानरस-पूर्वक आत्मा स्वादमे आता है तभी सम्यग्दर्शन है । विज्ञान-रस कहो या अतीन्द्रिय आनन्द कहो, सम्यग्दर्शनमे उसका स्वाद अनुभवमें आता है ।

मैं शुद्ध हूँ—ऐसा जो शुद्धनयका विकल्प—उसमे अटक जाना क्या है ?

वह मिथ्यादृष्टिका नयपक्ष है, सम्यग्दर्शन तो उस नयपक्षसे परे है। विकल्पकी आकुलताके अनुभवमे शुद्ध आत्माका अनुभव नही । सम्यग्दर्शनमे शुद्ध आत्माका निर्विकल्प अनुभव है । शुद्ध आत्माका अनुभव करना वह अन्तर्मुख भावश्रुतका काम है, वह विकल्पका काम नही । विकल्पमे आनन्द नही, उसमें तो आकुलता और दु.ख है, भावश्रुतमें आनन्द और निराकुलता है ।

अन्य विकल्पोकी अपेक्षा क्या शुद्धात्माका विकल्प अच्छा है ?

धर्मके हेतु तो एक भी विकल्प अच्छा नही, विकल्पकी जाति ही आत्माके स्वभावसे भिन्न है अतः उसको अच्छा कौन कहे ? जैसे अन्य विकल्पमें एकताबुद्धि मिथ्यात्व है, उसीप्रकार शुद्धात्माके विकल्पमें एकताबुद्धि भी मिथ्यात्व है, समस्त विकल्पोसे परे ज्ञानस्वभावको देखना—जानना—अनुभव करना सो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान है, वही समयका सार है । भले ही शुद्धका विकल्प हो—परन्तु उसको सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान कह सकते नहीं, उस विकल्प द्वारा भगवानकी भेट नही होती । विकल्प चेतन्यदरबारमे प्रवेश पानेका द्वार

नही। ज्ञानबलसे 'ज्ञानस्वभावका निर्णय' ही चैतन्यदरबारमें प्रवेश पानेका द्वार है।

❖ ज्ञानकी प्राप्ति कहाँसे होती है?

ज्ञानकी प्राप्ति सर्वज्ञस्वभावी आत्मामें होती है ज्ञानकी प्राप्ति विकल्पमेंसे नही होती। अन्दर शक्तिमेंसे जो पडा है वही आता है, बाहरसे नहीं आता। अन्दरकी निर्मल ज्ञानशक्तिमें अभेद हुई पर्याय सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित हो जाती है।

❖ सम्यग्दर्शन हेतु पहला नियम क्या है?

पहला नियम यह है कि 'मैं ज्ञानभाव हूं' ऐसा श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे निश्चय करना। सर्वज्ञ भगवानने समवशरणमें दिव्यध्वनि द्वारा जिस भावश्रुतका उपदेश किया था उसके अनुसार श्रीगुरुके पाससे श्रवण करके अन्दर भाव-श्रुत द्वारा ज्ञानस्वभावका निर्णय करना। भगवानने श्रुतमे ऐसा ही कहा है कि ज्ञानस्वभाव शुद्धात्मा है। ऐसा निर्णय करके गौतमादि जीवोने भावश्रुतरूपसे परिणमन किया, उससे 'भगवानने भावश्रुतका उपदेश दिया' ऐसा कहा है। भगवानको तो केवलज्ञान है, परन्तु श्रोतागण भावश्रुतवाले हैं, इससे भगवानने भावश्रुतका उपदेश दिया ऐसा कहा जाता है। सर्वज्ञ भगवानके द्वारा उपदेशित श्रुतमे ऐसा निर्णय करवाया है कि 'आत्मा ज्ञानस्वभाव है।' ऐसे ज्ञान-स्वभावका निर्णय करना वह सम्यग्दर्शन हेतु पहला नियम है।

❖ आत्माका निर्णय करनेके पश्चात् अनुभवके हेतु क्या करना चाहिये ?

आत्मा अर्थात् ज्ञानकी राशि, ज्ञानपुज, ज्ञानस्वरूप आत्मा रागवाला नही, कर्मवाला नहीं; वह परका करे यह तो बात भी नही। —ऐसे ज्ञानस्वभावका निर्णय किया वहाँ 'अब हमको क्या करना चाहिए' यह प्रश्न रहता नही, परन्तु जिस स्वभावका निर्णय किया, उस स्वभावकी ओर उसका ज्ञान झुकता है। निर्णयकी भूमिकामे यद्यपि अभी विकल्प है, अभी भगवान आत्मा प्रगट प्रसिद्ध हुआ नही, अव्यक्तरूपसे निर्णयमे आया है किन्तु साक्षात् अनुभवमे नही आया, उसको अनुभवमे लेनेके लिये क्या करना चाहिए ? कि निर्णयके साथ जो विकल्प है उस विकल्पमे नही अटकना। किन्तु विकल्पसे भिन्न ज्ञानको अन्तर्मुख करके आत्मसन्मुख करना। विकल्प कोई साधन नही। विकल्प द्वारा परकी प्रसिद्धि है, उसमें आत्माकी प्रसिद्धि नही, इन्द्रियोंके विकल्पोकी ओर अटका हुआ ज्ञान भी आत्माको प्रसिद्ध नही कर सकता–आत्माका अनुभव नही सकता; किन्तु उस परकी ओरके झुकावको छोडकर ज्ञानको आत्म-सन्मुख करना यही आत्माकी प्रसिद्धिकी रीति है, यही अनुभवका उपाय है।

❖ सम्यग्दर्शन होनेपर आत्मा समस्त विश्वके उपर तैरता है,—तैरता है इसका क्या अर्थ ?

तैरता है अर्थात् भिन्न रहता है; जिस प्रकार पानीमे तैरता

मनुष्य पानीमे डूबता नही किन्तु ऊपर रहता है, उसीप्रकार ज्ञानस्वभावरूपसे अपना अनुभव करनेवाला आत्मा, विकल्पोमे डूबता नही, विकल्पोमें एकाकार होता नही, किन्तु उनके ऊपर तरता है अर्थात् उनसे भिन्न स्वरूप ही अपनेको अनुभव करता है। उसमे आत्माकी कोई अचित्य परम गम्भीरता अनुभवमें आती है।

卐 सम्यक्त्वके प्रयत्नका प्रारम्भ कैसा है?

अपूर्व है,—पूर्णताके लक्षसे वह प्रारम्भ है। 'ज्ञानस्वभावी आत्माका निर्णय' अर्थात् पूर्णताका लक्ष, उस पूर्णताके लक्षसे प्रारम्भ सो वास्तविक प्रारम्भ है। स्वभावके निर्णयके कालमे 'ज्ञानका' अवलम्बन है, विकल्प होते हुए भी उसका अवलम्बन नही। विकल्प द्वारा सच्चा निर्णय नही होता, ज्ञान द्वारा ही सच्चा निर्णय होता है। ज्ञान स्वय ज्ञानरूप हो और विकल्परूप नही हो अर्थात् आत्मसन्मुख हो वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी रीति है। ज्ञान स्वय ज्ञानरूप होकर आत्माका अनुभव करता है।

अत्यन्त महिमापूर्वक पूज्य श्री कानजी स्वामी कहते हैं कि— अहा! अनुभवदशाका अचित्य स्वरूप आचार्यदेवने समझाया है, ऐसे अनुभवमें आनन्द-परिणति खिलती है। स्वानुभवमें ज्ञान भी अतीन्द्रिय है और आनन्द भी अतीन्द्रिय है। हे जीवो! आत्मसन्मुख होकर तुम ऐसा अनुभव करो!

卐

परिशिष्ट-२

धर्मी श्रावककी दिव्यदृष्टि

वीर सं० २४९० : भाद्र० शुक्ला २

❀

सोनगढमें "भगवान भवन" के वास्तु प्रसंग पर मंगल-प्रवचन

यह 'श्रावकाचार' ग्रन्थ श्री तारणस्वामीने रचा है; वे अध्यात्मदृष्टिवंत थे; करीब ५०० वर्ष पहले मध्यप्रदेशमें वे हो गये। श्रावकधर्म कैसा है और श्रावककी दिव्यदृष्टि कैसी होती है, उसका इसमें वर्णन है। प्रथम मंगलाचरणके रूपमें ॐकारको नमस्कार करते हैं—

(गाथा-१)

देवदेवं नमस्कृतं लोकालोकप्रकाशकं ।
त्रिलोकं अर्थ ज्योतिः ॐकारं च वंदते ॥

भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा वैमानिक-ये चार प्रकारके देव हैं, उन देवोंसे भी जो वंदनीय ऐसे सर्वज्ञदेव तीर्थंकर परमात्मा व उनकी ॐकार वाणी वे लोकालोकके

प्रकाशक हैं। ज्ञानज्योतिरूप सर्वज्ञ परमात्मा हैं, उनकी केवल-ज्ञानज्योति व दिव्यवाणी लोकालोककी प्रकाशक है, वह मंगलरूप है। प्रत्येक आत्माका स्वभाव ऐसा ही है। भगवानका ज्ञान व भगवानकी वाणी ऐसे शुद्धात्मस्वभावकी प्रकाशक है। ॐकार वह तीर्थंकर भगवानकी वाणी है और शुद्धात्मा उसका वाच्यरूप होनेसे उसको भी भाव ॐ कहते हैं। ऐसे ॐकारको वन्दन करके यहां मांगलिक किया है।

श्री तारणस्वामीको ॐकारके ऊपर बहुत प्रेम है। ॐ यह सर्वज्ञ भगवानकी दिव्यवाणी है और भगवान खुद भी ॐ स्वरूप है। भगवानके १००८ नामोंमें सबसे पहला 'ॐकाररूप' ऐसा नाम पं० बनारसीदासजीने लिखा है। भगवानकी ॐकार वाणी सुनकर चार ज्ञानके धारक गणधर-देव एक अन्तर्मुहूर्तमें बारह अंगकी रचना करते हैं। ऐसे सर्वज्ञदेवको व उनकी वाणीरूप ॐकारको नमस्कार करके श्री तारणस्वामीने मांगलिक किया है।

अब, स्वभावकी प्रकाशक व कुज्ञानकी नाशक ऐसी जिनवाणी–सरस्वती देवीको नमस्कार करते हैं :—

(गाथा–१२)

कुज्ञानतिमिरं पूर्ण अञ्जनं ज्ञानभेषजं ।
केवलीदृष्ट स्वभाव च जिनसारस्वती नमः ॥

जिनेश्वरकी वाणीरूपी सरस्वती कुज्ञान-तिमिरको

मिटानेके लिये परम ज्ञानअञ्जनके समान है, और केवली प्रभु द्वारा देखे गये स्वभावकी वह प्रकाशक है, ऐसी जिनवाणी-रूप सरस्वतीको नमस्कार।

भाव-सरस्वती तो अन्तरका भावश्रुतज्ञान अथवा केवल-ज्ञान है और द्रव्य–सरस्वती वीतरागकी वाणी है, उसको यहां नमस्कार किया है। कैसी है यह सरस्वती? शुद्धात्माका प्रकाश करनेवाली है और मिथ्यात्व-अन्धकारको मिटानेवाली है। भावश्रुतमें आनन्दका अनुभव है इसलिये वह 'स-रस' है। अन्तर्दृष्टिसे शुद्धात्माका भावश्रुतज्ञान करना यही सरस्वतीकी सच्ची उपासना है, ऐसे भावश्रुतके बिना अज्ञानी जीव अनादि कालमें अनेक बार द्रव्यलिंगी-दिगम्बर मुनि हुआ और पंचमहाव्रतका पालन करके नवमी ग्रैवेयक तक गया, किन्तु फिर भी भावश्रुतके बिना वह संसारमें ही रहा। शुभरागमें ऐसी ताकत नहीं जो अज्ञान-अन्धकारका नाश कर सके। अज्ञान-अन्धकारका नाश करनेकी ताकत भाव-श्रुतज्ञानरूप सरस्वतीमें ही है। और उसमें निमित्तरूप वीतरागी सन्तोंकी वाणी है। दूसरोंकी वाणी अज्ञान मिटाने-में निमित्त भी नहीं होती।

जैसा स्वभाव केवलज्ञानी भगवन्तने देखा वैसे ही स्वभावकी प्रकाशक जिनवाणी है, वस्तुस्वरूपका जैसा ज्ञान हुआ वैसा ही वाणीमें सहज आया, उसने शुद्ध आत्मा दिखाया। इस प्रकार शुद्धात्माके प्रकाशक व अज्ञानके नाशक

ऐसे सम्यग्ज्ञानको व जिनवाणीको नमस्कार करके उसका विनय किया।

इस प्रकार सर्वज्ञदेवको व उनकी वाणीरूप सरस्वतीको नमस्कार करके अब ३२ वीं गाथामें श्री तारणस्वामी सम्यग्दर्शनका स्वरूप कहते हैं :—

(गाथा-३२)

सप्तप्रकृति विच्छेदात् शुद्धदृष्टिश्च दृष्टते ।
श्रावकं अव्रतं जैनः संसारदुःखपरान्मुखं ॥

शुद्ध दृष्टिसे जिसने सम्यक्त्व प्रगट किया है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव वीतराग देव-गुरुका सच्चा भक्त होता है और श्रावकादिके सम्यक्धर्मका आचरण करनेवाला होता है, तथा संसारदुःखोंसे वह पराङ्मुख होता है।

देखो, यह सम्यग्दर्शन मूल बीज है। श्रावकको भी पहले ऐसा सम्यग्दर्शन होना चाहिये। सम्यग्दर्शनके बाद ही पंचम गुणस्थानकी श्रावकदशा हो सकती है, इसके बिना न तो श्रावकदशा हो सकती है और न मुनिदशा। इसलिये श्रावकाचारमें पहले शुद्ध सम्यग्दर्शनकी बात की है।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको दर्शनमोहकी पांच प्रकृतियां होती हैं, और किसी सादि-मिथ्यादृष्टिको दर्शनमोहकी सात प्रकृतिया होती हैं, अपने शुद्धात्माके श्रद्धानसे जीव जब शुद्ध

सम्यग्दर्शन प्रगट करता है तब सातों प्रकृतियोंका उच्छेद हो-जाता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, और मिथ्यात्व, सम्यक्त्वमोहनीय तथा सम्यक् मिथ्यात्वमोहनीय ये सात प्रकृतियां दर्शनमोहकी हैं। अपनी आत्माका शुद्ध-स्वभाव अखण्ड ज्ञायकरूप है-उसकी दृष्टिसे व अनुभूतिसे जब शुद्ध (क्षायिक) सम्यक्त्व होता है तब मिथ्यात्वका व सातों कर्मप्रकृतियोंका नाश हो जाता है। कर्मप्रकृतियां तो जड़ हैं, आत्मा न तो उनका कर्ता है और न नाशक, किन्तु आत्मा जब ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करके मिथ्यात्वका अभाव करता है तब मिथ्यात्वादि कर्मप्रकृतियोंका नाश भी स्वयमेव हो जाता है, ऐसा सम्बन्ध है।

एक समयमें अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण ज्ञानानन्दस्वभाव है, उसको भूलकर, रागादि विकार ही मैं, अथवा देहादिकी क्रियाका कर्ता मैं-ऐसी भ्राति पर्यायमें अपनी भूलसे अपने ही अपराधसे जीवने की है, तब कर्मकी मिथ्यात्वादि सात या पांच प्रकृतियां निमित्तरूप हैं, ज्ञानस्वभावके सम्यक्पुरुषार्थसे उनका छेद हो जाता है।

मिथ्यात्वादि भावकर्म है और कर्मप्रकृति वह द्रव्यकर्म है, भावकर्म तो आत्माकी पर्यायमें है, द्रव्यकर्म तो अजीव-में है। ज्ञानमूर्ति आत्माकी दृष्टिसे जब सम्यग्दर्शन हुआ तब मिथ्यात्वादि भावकर्मकी उत्पत्ति ही नहीं हुई, इसको कहते हैं कि भावकर्मका नाश किया। और निमित्तरूप कर्मका नाश

देहसे भिन्न आत्मा जीव है, उसका ज्ञानस्वभाव है, पर्यायमें जो रागादि अपराध है वह आस्रव-बन्ध है, उसमें निमित्त कर्मप्रकृति है वह अजीव है, उस अपराधका नाश व निर्मल पर्यायकी उत्पत्ति वह संवर-निर्जरा-मोक्ष है; ऐसे सातों तत्त्वका स्वरूप जानना चाहिये। दोष जीव स्वयं करता है उसमें कर्म निमित्त है, और शुद्धात्माकी दृष्टिसे व लीनतासे दोषको छेदने पर कर्मप्रकृति भी छूट जाती है।

यहाँ 'शुद्धदृष्टि' कहनेसे क्षायिक सम्यक्त्व लिया, सातों प्रकृतिके क्षयसे होनेवाले क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट बात ली। क्षायोपशमिक व औपशमिक सम्यक्त्वमें भी है तो शुद्ध-दृष्टि; किन्तु क्षायिक सम्यक्त्व उत्कृष्ट व अप्रतिहत है। शुद्धात्माकी दृष्टिरूप सम्यक्त्वसे ही धर्मका प्रारम्भ होता है, इसके बाद ही श्रावकदशाका पंचम गुणस्थान या मुनिदशाका छठा-सातवां गुणस्थान होसकता है। पहले सम्यग्दर्शनके आचरणके बिना श्रावकके या मुनिके कोई आचार नहीं होता। इसलिये सम्यक्श्रद्धाकी बात मुख्य (पहली) है; इसीको धर्मका मूल कहा है; यथा-"दंसणमूलो धम्मो"।

सम्यग्दर्शन होते ही सिद्ध समान अपना शुद्धात्मा प्रतीतिमें-देखनेमें-श्रद्धानमें-ज्ञानमें व स्वानुभवमें आ जाता है। और तबसे आत्मामें मोक्षमार्गका प्रारम्भ हो जाता है। इसके बाद ज्यों-ज्यों स्वरूपमें स्थिरता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों श्रावकधर्म या मुनिधर्म प्रगट होता है। श्रावकपना यह

कोई बाहरकी चीज नहीं है किन्तु आत्माकी अन्तरकी स्वरूप-स्थिरतारूप वीतरागी दशा है। ऐसी दशा सम्यक्त्वके बिना नहीं होसकती। जिसको सम्यक्त्व नहीं उसको तो अव्रती-जैनपना भी नहीं है। सच्चा जैनपना सम्यक्त्वसे ही बनता है। शुद्धात्माकी दृष्टिके बलसे जिसने मिथ्यात्वको जीत लिया वही सम्यग्दृष्टि जैन है, इसके बाद ही व्रतादिरूप श्रावकाचार होता है। सम्यक्त्वके बिना व्रतादि करे तो भी वास्तवमें वह जैन नहीं, मोक्षमार्गी नहीं, ऐसा तारणस्वामी भी कहते हैं। उसको संप्रदायसे, नामसे या स्थापनासे भले ही जैन कहा जाय, किन्तु गुणसे वह जैन नहीं, परमार्थसे मोहको जीतनेरूप जैनत्व उसको नहीं है।

देखो, यह जैनका स्वरूप! सच्चा जैन किसको कहना, इसकी भी लोगोंको खबर नहीं। पहला धर्मी, जिसको व्रत नहीं, चारित्र नहीं, किन्तु शुद्धात्माकी दिव्यदृष्टि है,-ऐसा अव्रती सम्यग्दृष्टि जैन कैसा हो? यह दिखाया है। जिसको व्रतादि न होनेपर भी समस्त परभावोंसे भिन्न अपने शुद्धात्माको देखता है वह पहले दर्जेका जैन है, वह धर्मी है, वह मोक्षका पथिक है। ऐसा जैन-सम्यग्दृष्टि संसार-दुःखोंसे पराङ्मुख है। वह मोक्षके सन्मुख है और संसारसे पराङ्मुख है।

'जैन अर्थात् जीतनेवाला; किसको जीतनेवाला? बाहर कोई शत्रु नहीं है, किन्तु अंतरमें राग-द्वेष-मोह-अज्ञानरूप

शत्रु है उसको सम्यक्त्वादि भावोंसे जो जीते–नष्ट करे वह सच्चा जैन है। ऐसा जैनत्वका प्रारम्भ सम्यग्दर्शनके द्वारा मिथ्यात्वको जीतनेसे होता है। अपनी पर्यायमें जो मिथ्यात्वादि शत्रु है उसको जो स्वभावके आश्रयसे जीते वही जैन है। जैनत्वका पहला नम्बर सम्यक्त्वसे ही शुरू होता है, इसके बिना "जैन" में नम्बर नहीं मिल सकता। बाह्यमें व्रतादि शुभाचरण करे उसमें पुण्य है, परन्तु आत्म-ज्ञानके बिना भवदुःखसे छुटकारा नहीं होता; इसलिये कहा कि सम्यग्दृष्टि भवदुःखसे पराङ्मुख है। रागादि तो भवका हेतु है, इसलिये रागमें जो धर्म मानता है वह वास्तवमें भवदुःखसे पराङ्मुख नहीं है, वह तो मोक्षसे पराङ्मुख है, और भवदुःखके सन्मुख है। धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थ हो तो भी भव-दुःखसे पराङ्मुख और मोक्षसुखके सन्मुख है।–यही है जैन!

जैनपना तो उसको कहते हैं कि जिसमें संसारदुःखसे व उसके कारणोंसे विमुखता हो व स्वभावकी सन्मुखता हो। संसारदुःखसे विपरीत ऐसे आत्मिक सुखको भोगने-वाला धर्मात्मा जैन होता है; ऐसे जैनको अपने आत्माकी दिव्यदृष्टि होती है। अपने शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावमें अन्तर्दृष्टि करने पर संसारदुःखसे पराङ्मुख हो जाता है अर्थात् विभावमेंसे उनकी परिणति हट जाती है और स्वभावकी ओर झुक जाती है। चौथे गुणस्थानमें अव्रती सम्यग्दृष्टि भी ऐसा होता है। श्रावकपना व मुनिपना तो इसके बाद आता है।

तीर्थंकरदेव क्या कहते हैं, साधु क्या कहते हैं व ज्ञानी क्या कहते हैं–यह भी जिसको खबर नहीं और अपने आपको 'जैन' या श्रावक मान ले, किन्तु यहां श्री तारणस्वामी उसको सच्चा जैन या सच्चा श्रावक नहीं कहते। जैन होनेके लिये अंतरमें प्रयत्न करना पड़ेगा और श्रावकदशा (पंचमगुणस्थान) के लिये तो और भी ज्यादा प्रयत्न करना पड़ेगा; फिर मुनिदशाके वीतरागी प्रयत्नकी तो बात ही क्या?

मैं शुद्ध ज्ञान-प्रकाशी चैतन्यसूर्य आत्मा हूं– ऐसी शुद्ध-दृष्टि करनेवालेको भगवान जैन कहते हैं, और वह संसारसे पराङ्मुख होते हैं। आकुलता वह दुःख है। सम्यग्दृष्टिने निराकुल आनन्दका अनुभव किया है इसलिये वह दुखसे पराङ्मुख है। दुःखसे रहित ऐसे अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद जिसने नहीं लिया उसको भवदुखसे पराङ्मुखता नहीं हो-सकती। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका भंडार है, उसमें घुसकर अन्तरमें एकाकार होकर जो सम्यग्दृष्टि हुआ, जैन हुआ उसकी परिणति भवदुःखसे पराङ्मुख हो गई व स्वभावसुख के सन्मुख हो गई। अभी उसको राग भी है, किन्तु उसकी दृष्टि रागसे विमुख है,—परिणतिने अपना मुंह स्वभावकी ओर फेर लिया है।

जब सम्यग्दर्शन हुआ तभीसे सम्यग्दृष्टि सुखका ही अनु-भव करनेवाला है, और रागकी जो आकुलता है उससे वह पराङ्मुख है, अर्थात् शुद्धदृष्टिमें शुद्धताकी ही प्रधानता है,

अशुद्धताकी गौणता या अभाव है। अपनेमें अतीन्द्रिय आनन्द-का भण्डार उसने देखा है। परकी ओरसे व विकारकी ओर से अपना मुँह (दृष्टि) हटाकर स्वभावकी ओर फेर लिया है। मैं पुण्य-पापका कर्त्ता, अल्प पर्याय जितना ही मैं, देहादिकी क्रियाका कर्ता मैं, ऐसी जो अनादिकी विपरीत मान्यता थी तब स्वभावसे विमुखता थी, उसको टालकर अब रागसे विमुख हुआ व स्वभावके सन्मुख हुआ; परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वभाव ही मैं हूँ—ऐसे स्वभाव-सन्मुख हुआ तब पर-राग व अपूर्णताकी तरफसे मुँह वापस फेर लिया, सारी दृष्टि ही पलट गई। इसीका नाम है दिव्यदृष्टि।

जो धर्म लेनेको आया है उसको परीक्षा करके धर्मकी सच्ची पहचान करनी चाहिए। धर्म तो अपूर्व अमूल्य चीज है। इसके लिये आत्मा क्या, जड़ क्या, आत्माकी क्रिया कौनसी, विकार क्या, मोक्षमार्ग क्या-इन सबकी पहचान करनी चाहिए। कौनसा भाव धर्म है, कौनसा भाव धर्म नहीं है-इसकी पहचानके बिना धर्मके बदलेमें अधर्म ले लेगा या जीवके बदलेमें अजीवको जीव समझ लेगा, या विकारको धर्म मान लेगा,- उसको सच्चा धर्म कहांसे मिलेगा? परसे-विकारसे भिन्न अपना असली स्वरूप क्या है उसकी खोज करना चाहिए। जिसने अपने अन्तरमें आत्माकी खोज की वह सम्यग्दृष्टि भवदुःखसे परांगमुख है। ऐसी दशा चतुर्थ गुणस्थानमें होती है, इसके बाद शुद्धताकी

वृद्धि होनेपर पंचम गुणस्थान होता है, वहां श्रावकके बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमा आदि होते हैं।

ऐसे धर्मात्मा-श्रावककी दृष्टि कैसी होती है यह बात गाथा ३५३में श्री तारणस्वामी कहते हैं-

(गाथा ३५३)

द्रव्यदृष्टि च सम्पूर्णं शुद्धं सम्यग्दर्शनं ।
ज्ञानमयं सार्थं शुद्धं करणानुयोग चिन्तनं ॥

देखो, यहां करणानुयोगके चिन्तनमें द्रव्यदृष्टिकी बात ली। शुद्धात्माकी दृष्टि करना यही समस्त अनुयोगोंका फल है।

- द्रव्यानुयोगमें आत्माके अध्यात्म-अनुभवकी बात है,
- करणानुयोगमें आत्माके सूक्ष्म-परिणामोंका कथन है,
- कथानुयोगमें तीर्थंकरादि पुराणपुरुषोंकी आराधनाका वर्णन है,
- चरणानुयोगमें श्रावक तथा मुनियोंके आचारका वर्णन है।

लेकिन चारों अनुयोगका सच्चा रहस्य शुद्धात्माकी दृष्टिसे ही समझमें आता है। यहां कहते हैं कि द्रव्यार्थिक-नय पूर्ण द्रव्यको देखनेवाला है, संपूर्ण आत्मद्रव्यको देखना ही शुद्ध सम्यग्दर्शन है। "द्रव्यदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि" पूर्ण स्वभावको देखनेवाली दृष्टि वही शुद्धदृष्टि है और वही सम्यग्दर्शन है। त्रिकाली स्वभावरूप वस्तु-जिसमें विकार नहीं,

गुण-गुणी भेदका विकल्प नहीं, परसे सम्बन्ध नहीं—ऐसे एकाकार शुद्ध अभेद द्रव्यको देखना-अनुभवमें लेना सो सम्यग्दर्शन है। इसमें अपने आत्मा पर ही दृष्टि है, दूसरों-के ऊपर दृष्टि नहीं है। शुभभावके समय बाह्यमें पंचपरमेष्ठी पर लक्ष जाये और भक्ति-पूजाका भाव हो, किन्तु उस समय भी सम्यग्दृष्टि की दृष्टि अपने चैतन्य भगवानके ऊपर है। अन्तरमें अपने चैतन्य भगवानको देखना (श्रद्धना) सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन परके लक्षसे नहीं होता, अपनेमें पर्यायके लक्षसे भी नहीं होता। मेरा आत्मा अनन्त गुणोंका पिंड है, मैं ही उसका आधार हूँ और अनन्त गुण आधेय हैं, ऐसे आधार-आधेय आदिके विकल्प भी द्रव्यदृष्टि-में नहीं हैं। एकाकार द्रव्य ही निर्विकल्प प्रतीतिमें आया है। इस प्रकार पूर्ण ज्ञायक आत्माको देखनेवाला जो द्रव्यार्थिकनय है वही द्रव्यदृष्टि है, वही सम्यग्दर्शन है, ऐसे सम्यग्दर्शनसे ही स्वघरमें वास होता है, यही सच्चा वास्तु है।

देखिये, यह आत्माका वास्तु होता है। ईंट-पत्थर के घरमें आत्माका वास नहीं है, आत्माका वास तो अपने अनन्त गुण-पर्यायरूप चैतन्यघरमें है। ईंट-पत्थरका मकान तो जड़का बना हुआ है वह आत्माका स्वघर नहीं है, आत्माका स्वघर तो चैतन्यमय है। द्रव्यदृष्टिसे ऐसे आत्मामें जिसने प्रवेश किया उसने स्वघरमें वास किया। तारणस्वामी कहते हैं कि जिस दृष्टिमें संपूर्ण

द्रव्य आया उस दृष्टिमें आत्माका वास हुआ, ऐसी दृष्टिवाले जीवने आत्म-घरमें वास किया। अज्ञानसे विकारमें वास था उसको छोड़कर सम्यक्त्वके द्वारा अब पवित्र चैतन्य-घरमें प्रवेश किया, यह मंगल वास्तु है। 'भगवान' अपने स्वघरमें आकर वसे। द्रव्यदृष्टिमें आया वही संपूर्ण आत्मा है। अकेली पर्यायको लक्षमें लेनेसे भी संपूर्ण द्रव्य प्रतीतिमें नहीं आता। पर्याय भले पूरी हो तो भी वस्तु इतनी मात्र नहीं है इसलिये वह अपूर्ण है। एक गुण, गुणरूपसे पूर्ण हो किन्तु पूरी वस्तु तो एक गुण जितनी नहीं है; इसलिये गुण-पर्यायके भेदसे सम्पूर्ण वस्तु अनुभवमें नहीं आती। पूरी वस्तु जितनी हो उतनी लक्षमें ले तभी संपूर्ण दृष्टि कहलायगी। द्रव्यदृष्टिमें जो अभेद स्वभाव आया वही सम्पूर्ण आत्मा है, इसलिये द्रव्यदृष्टिको सम्पूर्ण दृष्टि कहा। ऐसी दृष्टिके विना सम्यग्दर्शन होता नहीं, और इसके विना श्रावकका एक भी धर्म नहीं हो सकता।

पूर्ण द्रव्यको देखना जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिक-नय है, ऐसे द्रव्यार्थिकनयसे जिसने आत्माको देखा उसने अपने आत्मामें मोक्षका मण्डप रोपा। सम्यग्दर्शन है सो आत्माके मोक्षमण्डपका मंगल-स्तंभ है। जैसे लग्न-मण्डपमें मंगल-स्तम्भ रखते हैं वैसे यहां मोक्षकी लगनमें साधकजीव मङ्गलरूपसे सम्यग्दर्शनरूपी माणिक-स्तम्भ रखते हैं। सम्यग्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ये चार मोक्षमार्गके स्तम्भ हैं, उनमें

भी सम्यग्दर्शन मूल है। सम्यग्दर्शनके बिना श्रावकधर्म या मुनिधर्म भी नहीं होता। सम्यग्दर्शनके बिना भगवानकी सच्ची परमार्थ-भक्ति या जिनवाणीकी सच्ची उपासना नहीं होती। ऐसे शुद्ध सम्यग्दर्शनका लाभ द्रव्यदृष्टिसे होता है।

देखो, यह आत्माके लाभकी बात! देहमें विराजमान भगवान आत्मा है उसका लक्ष करनेसे सम्यग्दर्शनका सवाया लाभ होता है। 'लक्ष'का लाभ है। 'लक्ष' कहनेसे लाख रुपया नहीं परन्तु चैतन्यका लक्ष, उसीमें सच्चा लाभ है। सम्यग्दर्शनके बिना जीवको धर्मका सच्चा लाभ नहीं होता

- अकेली रागकी मंदतासे धर्मका लाभ नहीं होता,
- करोड़ों रुपयोंकी लक्ष्मीसे भी धर्मका लाभ नहीं होता,
- कुटुम्ब-परिवारसे भी धर्मका लाभ नहीं होता,
- चैतन्यके लक्षसे ही धर्मको लाभ होता है।

यहां 'शुद्ध' सम्यग्दर्शन कहा है; 'शुद्ध' का अर्थ है निश्चय; व्यवहारमें जो शुभराग है वह 'शुद्ध' नहीं है। जो पराश्रित श्रद्धा है या भेदरूप श्रद्धा है वह शुद्ध दृष्टि नहीं है। शुद्धआत्माकी दृष्टि वही शुद्ध श्रद्धा है। ऐसी दृष्टिसे ही ज्ञानमय शुद्ध आत्माका अनुभव होता है, स्वभावके आनन्दके अनुभवका लाभ शुद्ध दृष्टिसे ही मिलता है। श्रावकपना इसके बाद होता है।

भाषामें या अक्षरोंमें ज्ञान नहीं है, अन्दर चैतन्य पदार्थ-

में ज्ञान है, उसका अनुभव होनेसे ही मोक्षमार्ग हो सकता है, गृहस्थ-श्रावकको चौथी भूमिकामें इसका अनुभव हो-जाता है। देखो, यह करणानुयोगके चिंतनका फल। जैन-धर्मके किसी भी अनुयोगका फल शुद्धात्माकी ओर ही ले जाता है। करणानुयोगमें भी आत्माके सूक्ष्म परिणामका विचार करके, उसका जाननहारा आत्मा त्रिकाल है-इसको जाने तब करणानुयोगके चिंतनका फल आये। शुद्धात्माको न जाने तो करणानुयोग आदिका सच्चा फल आता नहीं।

ज्ञानावरणादि आठ कर्म, उसकी १४८ प्रकृतियाँ, इनमेंसे प्रत्येक गुणस्थानमें इतनी प्रकृतियोंकी सत्ता, इतनीका उदय, इतनीका बन्ध, इतनीकी व्युच्छित्ति-इत्यादि करणानुयोगकी विचारणाका फल क्या? तो कहते हैं कि स्व-परके सूक्ष्म परिणामकी विचारधारामें शुद्ध द्रव्यस्वभावका लाभ होना यही उसका फल है। करणानुयोगमें भी वीतरागताका ही तो उपदेश है। जैनधर्मके चारों अनुयोगका या सभी शास्त्रों-का सार भगवानने 'वीतरागता' कहा है (पंचास्तिकाय गा० १७२)। यह वीतरागता कैसे हो? सभी शास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागता है, करणानुयोगका तात्पर्य भी वीतरागता है। पर-निमित्त-राग या भेदके ऊपरसे दृष्टिको हटाकर शुद्ध-आत्माके ऊपर दृष्टि देनेसे वीतरागता होने लगती है और यही शास्त्र-पठनका फल है। अकेले शब्दोंको कण्ठस्थ कर लेनेसे शास्त्रका फल नहीं मिल जाता।

अब द्रव्यानुयोगका अभ्यास करनेके लिये श्री तारण-स्वामी कहते हैं—

(गाथा-३५६)

द्रव्यानुयोग उत्पाद्यं द्रव्यदृष्टि च संयुतं।
अनन्तानन्तदिष्टंते स्वात्मानं व्यक्तरूपयं॥

द्रव्यानुयोगका अभ्यास करना चाहिए, साथमें द्रव्यार्थिक नयसे शुद्ध आत्माकी दृष्टि भी प्राप्त करनी चाहिए, जिससे अपने शुद्धआत्माके समान जगतकी अनन्तानन्त आत्माएं प्रगटरूपसे दिखलाई पड़ें।

देखो, ये श्रावकका काम! श्रावकको भी द्रव्यानुयोगका अभ्यास करना चाहिए और शुद्धदृष्टि प्रगट करनी चाहिए। आत्मा क्या है, स्वभाव क्या है, विभाव क्या है, अजीव क्या है, इन सबका अभ्यास तत्त्वदृष्टिसे करना चाहिए। द्रव्यकी अर्थात् शुद्धात्माकी जिसमें प्रधानता हो ऐसा 'द्रव्यानुयोग उत्पाद्य' अर्थात् अपने ज्ञानमें उसका अभ्यास करके सम्यग्ज्ञान उत्पन्न करना, द्रव्यानुयोगका ऐसा अभ्यास वीतरागताका कारण है।

चारों अनुयोगोंमें द्रव्यानुयोगका अभ्यास आत्मप्राप्तिका मुख्य साधन है। उसके साथ शुद्धदृष्टि भी करनी चाहिए। अकेला .रलक्षी अभ्यास कर लें उसकी बात नहीं है, किंतु शुद्धआत्माकी अन्तर्दृष्टिके साथ अभ्यास करनेकी बात है।

शुद्धदृष्टिके बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं होता। आत्माको शुद्धदृष्टिसे जो देखता है उसको सब आत्मा भी शुद्धस्वभाव वाले दिखते हैं। रागकी दृष्टि हटकर ज्ञायक स्वभावकी दृष्टि हुई तब अपना आत्मा परमात्मसुखसे परिपूर्ण देखा, अपनेमेंसे पर्यायबुद्धि छूट गई, और दूसरोंको भी अकेली पर्यायदृष्टिसे न देखकर उनके स्वभावको देखता है। अनंत आत्मा भिन्न-भिन्न हैं और प्रत्येक आत्मा परिपूर्ण है-यह जैन सर्वज्ञ परमेश्वरने साक्षात् देखी हुई बात है। "अन्तमें तो सब एक ही हैं?" तो कहते हैं कि नहीं, मुक्तअवस्थामें भी अनन्त सिद्ध आत्माओंकी प्रत्येककी अपनी अपनी भिन्न-भिन्न सत्ता है, मुक्त जीव एक नहीं, अनन्त हैं। अनादिसे प्रत्येक जीव भिन्न है, व मोक्षमें भी अनन्तकाल तक भिन्न ही रहते हैं।

सर्वज्ञदेवकी स्तुति करते हुए साधक कहता है कि हे सर्वज्ञ प्रभो! आप सभी आत्माओंको शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, अपनी-अपनी पृथक् सत्तावाले देख रहे हो व ऐसा ही आपकी वाणीमें आया है। राग आत्माका वास्तविक स्वरूप नहीं, सम्यग्दृष्टि अपने आत्माको व दूसरे आत्माको भी, रागको गौण करके शुद्ध ज्ञायकस्वभावरूप देखता है, यह सच्चे ज्ञानकी रीति है। पर्यायमें विविधता है—कोई अनन्त संसारी, कोई वीतरागी, कोई रागी, कोई कर्मसे बंधा हुआ, कोई मुक्त,-किन्तु पर्यायके भेदको गौण करके यदि द्रव्यदृष्टिसे देखा

जाय तो सभी जीव शुद्ध-बुद्ध एकस्वभावी हैं, स्वभावमें फर्क नहीं है। एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय या सिद्ध-सभी जीव चैतन्यज्योति हैं; इन्द्रिय आत्मा नहीं है, आत्मा तो चैतन्य है। ऐसा वस्तुस्वरूप अन्तर्दृष्टिवंत सम्यग्दृष्टि ही देखते हैं। पर्यायमें तो सभी जीवोंको शुद्धता प्रगट नहीं हुई है किन्तु जिसने अपनेमें पर्यायको गौण करके शुद्ध द्रव्यको प्रगट देखा वह सभी जीवोंमें भी पर्यायको गौण करके शुद्ध स्वरूपको प्रगट देखता है।

अहो, आत्माके स्वभावकी असली वस्तु तो यह है! अपने ऐसे वस्तुत्वमें आत्मा बसता है। क्या ईंट-पत्थरोंमें आत्मा बसता है?—नहीं; ईंट-पत्थरके बने हुए मकानमें चैतन्यमूर्ति आत्माका वास नहीं होता, चैतन्यका वास जड़में कैसे हो सकता है? चैतन्यस्वरूप आत्माका वास्तु तो अपने अनन्त निर्मल गुण-पर्यायमें ही है। -यह है चैतन्य भगवान-का सच्चा वास्तु।

अब द्रव्यदृष्टिकी दिव्यता दिखाते हैं—

(गाथा-३५७)

दिव्य द्रव्यदृष्टि च सर्वज्ञं शाश्वतं पदं।
नंतानंत चतुष्टं च केवलं पद्मम् ध्रुवं॥

द्रव्यदृष्टि अपूर्व है-दिव्य है-शोभनीक है, जो अपने आत्माको सर्वज्ञ व अविनाशी पदमें दिखाती है, जो अनन्त-

ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यरूप चतुष्टयको झलकाती है। जो केवल, परसंग रहित निश्चल अविनाशी, प्रफुल्लित कमलके समान विकसित व निर्लेप आत्माको प्रकाशित करती है।

ऐसी दिव्यदृष्टि श्रावकोंको भी होती है। द्रव्यदृष्टिको दिव्य कहकर शुद्ध निश्चयनयकी या द्रव्यार्थिकनयकी महिमा बताई है। ऐसी दिव्य द्रव्यदृष्टिका अभ्यास जीवको वीतरागताकी व आत्मानुभवकी गुफामें पहुँचा देता है। यह दिव्यदृष्टि मोक्षमार्गमें परम सहायक है। मोक्षमार्गको देखनेके लिये यह दिव्यचक्षु है। इसके बिना मोक्षमार्ग देखा नहीं जाता।

देखो तो सही, सन्तोंने आत्माकी कैसी महिमा की है! आत्माका कैसा गुणगान किया है! किन्तु लोगोंको चैतन्य-तत्त्वकी महिमाकी खबर नहीं।

द्रव्यदृष्टि दिव्य है, अपूर्व है, एक ज्ञायक परमानन्द आत्माको देखनेवाली दृष्टि ही दिव्य है, वही प्रधान है और वही अपूर्व है। ऐसी दृष्टि एक समयमें पूर्णानन्दसे भरपूर भगवानको देखती है इसलिये वह पूर्णदृष्टि है। इसके सिवाय बाह्यदृष्टि–व्यवहारदृष्टि तो जीवने अनन्तबार की, वह अपूर्व नहीं, दिव्य नहीं। सर्वज्ञ स्वभावसे भरा हुआ जो शाश्वत चैतन्यपद उसको द्रव्यदृष्टि देखती है इसलिये वह दिव्य है। अहा, यह दिव्यदृष्टि अपनेमें सर्वज्ञपदको दिखाती है। अपनेमें ही सर्वज्ञता भरी हुई है वह इस दिव्यदृष्टिके द्वारा ही दिखलायी देती है। सर्वज्ञपदके

निधानको यह दिव्यदृष्टि ही खोलती है। परकी सर्वज्ञता परमें रही, अपना सर्वज्ञपद अपने स्वभावमें है, उसको यह द्रव्यदृष्टि देखती है। ऐसी दृष्टि प्रगट करना यह तो श्रावकाचारसे भी पहलेका धर्म है; मुनिधर्म तो इससे बहुत ऊँचा है। पहले अन्तरकी दिव्यदृष्टिसे अपने स्वभावको देखे इसके बाद ही श्रावकधर्म या मुनिधर्म हो सकता है।

अपने ज्ञायक स्वभावको देखने वाली यह दृष्टि अपूर्व है, वह निज पदको दिखाती है; और ऐसी दृष्टि प्रगट करना वही जैनपना है। किसी वस्त्रादिमें या वस्त्रके त्यागमें जैनत्व नहीं रहता, जैनत्व तो आत्माकी सच्ची दृष्टिमें व लीनतामें रहता है। नित्यानन्दी प्रभु–ध्रुवपद आत्मा उसको ध्रुवदृष्टि देखती है; इसी दृष्टिको 'दिव्य' कहते हैं क्योंकि वही आत्माको देखने वाली दिव्य आंख है, वही अपूर्व (अतीन्द्रिय) चक्षु है, दिव्यचक्षु है। यह बहारकी आंखें तो मिट्टीकी हैं; जो परको ही देखे व स्वको न देखे वह दिव्यदृष्टि नहीं। अपने अंतरमें सर्वज्ञपदको जो देखे वही दिव्यदृष्टि है। यह दृष्टि अनन्तचतुष्टयस्वरूप अपनी आत्माको झलकाती है। जिसको ऐसी दिव्यदृष्टि हुई उसकी आत्मामें अवश्य अनन्त-चतुष्टय झलकेगा।

देखो, यह धर्मी श्रावककी दिव्यदृष्टि! केवल अर्थात् असहाय–दूसरोंकी जिसमें सहाय नहीं, रागका या इन्द्रियोंका जिसमें अवलंबन नहीं, परका जिसमें सङ्ग नहीं, जिसमें

विकार नहीं, —ऐसे अबद्धस्पृष्ट आत्माको देखने वाली जो दृष्टि है वह सम्यग्दर्शन है, उसीको यहां दिव्यदृष्टि कही है। दिव्यदृष्टि कहो या द्रव्यदृष्टि कहो, या भूतार्थदृष्टि कहो, सम्यग्दर्शन कहो;– यही श्रावकधर्मका व मुनिधर्मका मूल है।

परमानन्दस्वरूप आत्मा बाहरकी दृष्टिसे नहीं दीखता, उसको देखनेवाली तो दिव्यदृष्टि है। ऐसी दिव्यदृष्टिसे चैतन्य-कमलका विकास होकर केवलज्ञान खिल जाता है, और अनन्त-चतुष्टय झलक उठते हैं। ऐसे चैतन्यकमलको खिलानेवाली (विकसित करनेवाली) यह दिव्यदृष्टि है। भीतरमें केवल-ज्ञानस्वभावको देखनेवाली शुद्धदृष्टिके बलसे अनन्त चतुष्टय-कमल विकसित होजाता है, आत्मा प्रफुल्लित होता है, किंतु ऐसी दृष्टिके बिना कोई रागसे या व्यवहार-क्रियासे आत्मा प्रफुल्लित नहीं होता, संकुचित होता है।

देखो, यह दिव्यदृष्टिकी महिमा! ऐसी दृष्टिसे श्रावक भी अपने ध्रुव-असहाय-चैतन्यकमलको एकाकाररूप देखता है, और इससे अनन्त सुख पाता है। शक्तिमें कारणरूप जो चतुष्टय विद्यमान हैं उनके ऊपर दृष्टि लगानेसे वह चतुष्टय कार्य-रूप व्यक्त हो जाते हैं। जिसमें अनन्त चतुष्टय भरा हुआ है ऐसे निर्लेप चैतन्यस्वभावके ऊपर दृष्टि लगाकर अभ्यास करते करते पर्यायमें वह खिल जायगा। किन्तु इसके सिवा अन्य किसी उपायसे,–रागादिके, निमित्तके या व्यवहारके अभ्याससे केवलज्ञान होगा ऐसा यह दृष्टि नहीं

दिखलाती; और यदि ऐसा देखे तो वह दृष्टि सच्ची नहीं।

आत्मामें अनन्त चतुष्टय भरा है उसको धर्मीकी दृष्टि देखती है, और उसमें एकाग्र होनेसे ही पर्यायमें परमात्मपद खिलता है,-ऐसा यह दृष्टि दिखाती है। इसके सिवाय परमात्मपद होनेकी अन्य कोई क्रिया नहीं, दूसरा कोई यथार्थ कारण नहीं।

यह द्रव्यदृष्टि कहो, दिव्यदृष्टि कहो, धर्मकी नींव कहो, इसके बाद ही विशेष स्थिरता होनेपर श्रावकपना या मुनि-पना आता है। जितनी रागरहित स्थिरता हुई उतना निश्चयधर्म है और श्रावकके या मुनिके व्रत-महाव्रत आदि जो शुभविकल्प हैं वह व्यवहारधर्म है; किन्तु ऊपर कही ऐसी शुद्ध दिव्यदृष्टिके बिना कभी न तो सच्चा श्रावकपना होता है और न मुनिपना। इसलिये श्रावकधर्मके वर्णनमें पहले यह दृष्टि दिखायी।

जय हो ऐसी दिव्यदृष्टिके धारक सन्तोंकी !

केवलज्ञान–मुकरमें जिसको
तीनो लोक दिखाते हैं।
जिसके स्वाभाविक वल-जलका
निधि-दल थाह न पाते हैं।
रत्नत्रयकी सुर-सरितासे,
शुद्ध हुआ जो द्रव्य महान् ।
उसी आत्मरूपी सद्गुरुकी
करते हैं पूजन विद्वान ।

* * *

आतम ही देव निरजन,
आतम ही सद्गुरु भाई।
आतम शास्त्र, धर्म आतम ही
तीर्थ आतम ही सुखदायी।
आतम-मनन ही है रत्नत्रय
पूरित अवगाहन सुखधाम ।
ऐसे देव, शास्त्र, सद्गुरुवर
धर्म, तीर्थको सतत प्रणाम ।

पूज्य श्री तारणस्वामी रचित
पडित पूजा
अनु० श्री अमृतलाल 'चंचल'